सरल शरीर विज्ञान

[हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस के ऐडमिशन, पटना के मैट्रिक्युलेशन और यू० पी० बोर्ड के हाई स्कूल परीक्षाओं के लिए स्वीकृत पाठ्य पुस्तक]

—:०:—

लेखक
श्री ज्ञानकी शरण वर्मा

—:०:—

प्रकाशक
रामनारायण लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद

१९४३

तृतीय संस्करण] [मूल्य १।)

Printed by
RAMZAN ALI SHAH
the National Press, Allahabad.
3 M

भूमिका

शरीर-रचना जैसे कठिन विषय पर लड़के और लड़कियों के पढ़ने योग्य पुस्तक लिखना बहुत कठिन है। विषय की कठिनाई उतनी नहीं है—कहीं कही पर विषय भी ज़रा पेचीदा ही है—जितनी कि अंगों और विविध कल-पुर्ज़ों के समुचित और साथ ही सरल नामो को निश्चित करने की। माना कि इन सबो के संस्कृत नाम हैं, पर वे आरम्भ में इतने बड़े और कठिन मालूम होते हैं कि पढ़ने वाले का जी घबरा जाता है। इसी से मैंने पहले सरल हिन्दुस्तानी नाम देने की चेष्टा की है। जहाँ नहीं बन सका या गड़बड़ी की सभावना मालूम हुई वहाँ संस्कृत नाम ही दिये हैं, पर जहाँ हिन्दुस्तानी नाम दिये गये हैं वहाँ साथ ही साथ संस्कृत नाम भी दे दिये गये और प्राय: सभी के अँगरेज़ी नाम भी संस्कृत शब्द के साथ या अकेले हैं। कई नाम मेरे निश्चित किये हुए हैं। कुछ विद्वान् शायद मेरे गढ़े नामों को पसंद न करें, पर मैंने यह धृष्टता सरलता के विचार से ही की है। उनके साथ ही सर्व-सम्मति से स्वीकृत संस्कृत नाम भी हैं, जिससे आशा है कि मेरे चलाये नामों पर किसी को भी आपत्ति न होगी।

शरीर-रचना का विषय बड़ा ही रोचक है। जो शरीर 'साधन-धाम' और 'विबुध दुर्लभ' है उसकी रचना की रोचकता में किसे सन्देह हो सकता है, पर लड़के-लड़कियों के योग्य बनाने के लिए विषय का वर्णन भी रोचक ढंग से होना चाहिए। मेरा वर्णन रोचक है या नहीं, इसका फ़ैसला पाठक ही करेंगे, पर मैंने सभी बातों को अच्छी तरह समझाने की यथासाध्य चेष्टा ज़रूर की है।

'सरल शरीर विज्ञान' की तैयारी मे मुझे स्वर्गीय डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्मा की 'हमारे शरीर की रचना', डाक्टर मुकुन्द स्वरूप वर्मा की 'मानव शरीर रचना विज्ञान', डाक्टर टामस एच० हक्सली की 'फ़िज़ियोलोजी' (अँगरेज़ी) और भाटिया और सूरी महोदयो की 'एलीमेन्टरी फ़िज़ियोलोजी' (अँगरेज़ी) से बहुत सहायता मिली है। मैं इन विद्वान लेखको का अत्यन्त आभारी हूँ। साथ ही मैं अपने दो नवयुवक मित्रो, श्री सीताराम जायसवाल और श्री व्रजेन्द्रबहादुर सिंह, का आभारी हूँ। इन्होने पुस्तक लिखने के और उसके छपते समय कई तरह की सहायताएँ प्रदान की। सब से अधिक आभारी मैं उत्साही प्रकाशको का हूँ, जिनके प्रोत्साहन से लड़के-लड़कियो के लिए मैं यह पुस्तक लिख सका।

इलाहाबाद
२ अगस्त, १९४०

जानकीशरण वर्मा

विषय-सूची

कई नाम देकर मेरा बोझ भारी कर दिया। पर जीते-जागते, दिल-वाले, विद्यार्थी इसकी परवा नहीं करेंगे। वे विषय को समझने की कोशिश करेंगे और जरा से ध्यान से ही सभी नाम उन्हें याद हो जायँगे। बात यह है कि जँचे-तुले नाम संस्कृत भाषा के शब्द हैं, जिनमे से कई जरा बड़े और टेढ़े हैं। तुम्हारे समझने के लिए मैंने पहले हिन्दुस्तानी नाम दिये हैं और तब संस्कृत और अँगरेज़ी नाम। जब तुम सरल हिन्दुस्तानी शब्द के सहारे किसी अंग को जान लोगे और वर्णन से उसका काम समझ लोगे तो संस्कृत के उपयुक्त नाम भी तुम्हें आसानी से याद हो जायँगे। साधारणत: चतुर और तेज़ विद्यार्थी को, अगर उसने पुस्तक को रुचि के साथ पढ़ा तो, हिन्दुस्तानी, संस्कृत और अँगरेज़ी, तीनों नाम याद हो जायँगे।

आशा है कि तुम इस शरीर रचना के रोचक विषय को आसानी से अपने ज्ञान-भांडार के अन्तर्गत कर लोगे।

—ग्रंथकार

सरल शरीर विज्ञान

शरीर

आदमी का शरीर एक ऊँचे दर्जे की मशीन है । ससार में आदमी की बनाई कोई भी मशीन इसकी बराबरी नहीं कर सकती । इसके कल-पुर्जों की बनावट पक्की है, उनका चुनाव सुन्दर और उपयुक्त है और उनके काम सराहनीय हैं । इन कल-पुर्जों में सगठन है, जिसके सहारे शरीर जीवित रहता और अपना काम करता है ।

शरीर-रूपी मशीन की विचित्रता यह है कि वह खाये हुए पदार्थों से ख़ून तैयार करती और उसी ख़ून से अपने आपको ठीक और चालू रखती है । आदमी की बनाई हुई बहुत सी मशीनें इस ससार मे हैं, पर क्या कोई भी मशीन एक बूँद ख़ून तैयार कर सकती है ?

शरीर और इंजन—

शरीर देखने में तो इंजन की तरह नही है, पर यह काम वही करता है जो कि इजन करता है । इजन का असल काम है कोयला, तेल, पानी इत्यादि से बनी रासायनिक शक्ति को बदल कर यांत्रिक (यंत्र सबधी, mechanical) शक्ति तैयार करना, जिससे वह चलता या अपना काम करता है । इसी तरह आदमी का शरीर खाये हुए पदार्थों से बनी रासायनिक शक्ति को बदल कर अपनी गति के लिए शक्ति और गर्मी तैयार करता है ।

शरीर और मशीन में भेद—

शरीर रूपी मशीन आदमियों की बनाई मशीनों की अपेक्षा बहुत ज्यादा दिनों तक चलती है और इसमें एक विशेषता यह भी है कि छोटी-मोटी मरम्मतें यह अपने आप ही—बिना किसी बाहरी मदद के—कर लेती है। अक्सर शरीर का कोई हिस्सा जरा कट जाता है, लेकिन वह कटा हुआ भाग आप ही आप जुट भी जाता है। खेल में बच्चों के अनेकों खरोंच, वैसे भी बड़ों-छोटों के अनेकों छोटे मोटे जख्म, मामूली फोड़े-फुन्सियाँ, सभी, आप ही आप अच्छे हो जाते हैं। आदमी की बनाई हुई मशीन का यह हाल नहीं है। उसमें अगर कोई साधारण खराबी भी होती है तो वह बाहरी मदद से दूर होती है।

शरीर धीरे-धीरे बढता है पर मशीन ज्यों की त्यों रहती है। हम जानते हैं कि बच्चे बढकर जवान होते हैं, उनके शरीरों का बढना तभी बंद होता है, जब कि वे अपनी बढ़ने की हद तक पहुँच जाते हैं।

शरीर एक सुप्रबंधित नगर है—

शरीर की तुलना हम मशीन से कर चुके। यह हमने जान लिया कि बहुत अंशो में शरीर मशीन से मिलता-जुलता है। अब हम इसी बात को दूसरे दृष्टिकोण से देखेंगे। सुप्रबंध और संगठन के विषय में आदमी का शरीर एक अच्छे सुसंगठित, सुप्रबंधित नगर से मिलता जुलता है। एक नगर में बहुत से मुहल्ले होते हैं। शरीर में भी अलग अलग अवयव अंग, मानो अलग-अलग मुहल्ले हैं। एक मुहल्ले में कई मकान होते हैं। प्रत्येक अंग में घरों की तरह कई कोष (cell, सेल) हैं, जिनसे कि वह अंग बना होता है। (इन कोषों के बारे में आगे बताया जायगा।) इन कोष-रूपी घरों में जीवन के अंश रहते हैं। ये आपस में मिल-जुल कर रहते और अपना काम करते हैं, जिससे कि मुहल्लों (अवयवों)

और सारे नगर (शरीर) का काम अच्छी तरह चल सके। हर मुहल्ले (अवयव) का अपना कार्य-विभाग रहता है। सभी कार्य-विभागो के अच्छे सचालन से सारे नगर (शरीर) का सचालन अच्छी तरह होता है। फिर सर्व-साधारण की भलाई और काम के लिए भी कई तरह के प्रबंध हैं। इस शरीर-रूपी नगर में नहरें हैं, जिनसे (पानी नही) खून सभी मुहल्लों (अवयवो) में पहुँचता है और उनके पोषण में सहायक होता है। फिर मुहल्ले मुहल्ले (अग अग) से कूड़ा-कर्कट ले जाने वाली नालियों का प्रबध भी है। एक बड़े मार्के का प्रबध बडी आंत के सहारे होता है। बड़ी आंत क्या है, नगर का गन्दा नाला है। उसी से तो हर रोज़ मल निकलता है। अगर इस गन्दे नाले में गदगी रह जाय तो नगर (शरीर) में बीमारी फैल जाय। इस नगर में सफाई का बहुत खयाल रखा गया है। तभी तो रोम-कूप (रोएँ की जड में बहुत ही छोटे सुराख) के रूप में बहुत सी नालियो के मुँह नगर के बाहरी हिस्सों मे (शरीर की बाहरी खाल पर) खुले हैं। नाको के रास्ते ताज़ी हवा का असर हर मुहल्ले (अवयव) और घर (कोष) में पहुँचता रहता है। इतना ही नहीं, इस शरीर-रूपी नगर में बिजली का भी इन्तजाम (प्रबध) है। स्नायु (nerves), जिनके ज़रिये बाहर की सभी खबरें दिमाग़ तक पहुँचती हैं और फिर दिमाग भी अपनी आज्ञा सभी अगो को भेजता है, बिजली के तार सरीखे हैं। इन सब बातो को देखते हुए कहना पडता है कि आदमी का शरीर एक सुसगठित, सुप्रबधित, नगर की तरह है, जहाँ प्रकृति की ओर से सभी बातों का खयाल रखते हुए अच्छे से अच्छे प्रबध किये गये हैं।

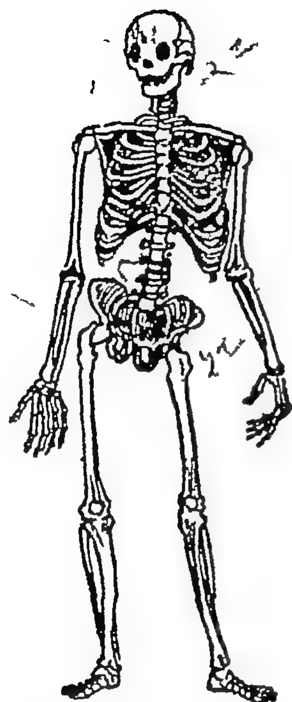
शरीर के संस्थान--

अब हम इन प्रबन्धो पर विचार करेंगे। जैसा कि ऊपर बताया गया है, शरीर में रक्त-सचालन (खून का दौरान) उसके पोषण का प्रबन्ध है; पाखाना, पेशाब और पसीना निकलने की क्रियाएँ



शरीर का मास-सस्थान। चित्र न० १

सफाई का प्रबध है, फिर हवा का प्रबध है, जिससे साँस के साथ जीवन-रक्षा के पदार्थ शरीर के अन्दर पहुँचते हैं और निकलती हुई हवा के साथ शरीर के अन्दर का कुछ विकार भी निकलता है; शरीर पर बाहरी ससार के सम्पर्क (लगाव) की खबरों को दिमाग तक पहुँचाने के लिए और दिमाग का हुक्म वापस लाने के लिए स्नायुओं का प्रबध है; जिससे खून तैयार होता है, अर्थात् भोजन, उसके पचाने का प्रबध है, शरीर को सधा रखने के लिए हड्डी की ठठरी का प्रबंध है, और इस ठठरी को ढकने, उसकी हड्डियों को जगह जगह पर जुडी रखने और उनको घुमाने-फिराने के लिए मांस और मांस-पेशियो (muscles) का प्रबध है। इन प्रबंधों में से हर प्रबध को पूरा करने के लिए कुछ अवयवों (अंगों, organs) के अलग-अलग समूह हैं। एक एक अवयव-समूह को **संस्थान** (system) कहते हैं। ऊपर बताये सभी प्रबधों को अच्छी तरह अजाम देने, पूरा करने के लिए, शरीर में मुख्य ८ संस्थान हैं। शरीर के बाहरी हिस्से से अन्दर की ओर चलते हुए इन सस्थानो के नाम ये हैं :—



हड्डियों का सस्थान । चित्र नं० २

(१) मांस-संस्थान (musculaı system)— इसमें मांस या पेशियाँ (पुट्ठे, muscles) हैं।

(२) हड्डियों का सस्थान (अस्थि-सस्थान the skeletal or bony system)— इसमे हड्डियो की ठठरी और उसके जोड हैं।

(३) पाचन या पोषण-संस्थान (The dıgestıve system) इस संस्थान के अगो द्वारा हम भोजन शरीर के अन्दर ले जाते और उसे पचाते हैं। इसके अंग हैं आमाशय (पेट), आतें (छोटी और बड़ी), जिगर (यकृत, lıver) इत्यादि। पाखाना होने का प्रबंध (बड़ी आंत द्वारा) इसी सस्थान के अन्दर है।

(४) रक्त-संचालक संस्थान (The cırculatory system)— दिल (हृदय), और ख़ून ले जाने वाली नालियाँ इस सस्थान के अंग हैं।

(५) सांस का संस्थान (श्वासोच्छ्वास संस्थान, the respiratory system)—इस सस्थान में वे अग हैं, जिनसे

है। हर पौदे और जानवर की यह स्वाभाविक वृत्ति है कि वह अपनी ही तरह दूसरा जीव पैदा करता है, जिससे सृष्टि बढ़ती है और ससार में तरह तरह के जीव पाये जाते हैं।

इस सस्थान के अग मर्दों मे दूसरे और औरतो में दूसरे हैं। दोनों से निकले बहुत छोटे छोटे अशो के मिलने से एक तीसरा व्यक्ति या जीव तैयार हो जाता है।

यह विषय बहुत बड़ा है और इस छोटी सी पुस्तक के अन्दर अच्छी तरह नहीं समझाया जा सकता, पर आशा की जाती है कि हर मनुष्य और बालक-बालिकाएँ भी बढ़ने पर इस विषय को अच्छी तरह जानने की कोशिश करेंगे।

ऊपर बताये आठ संस्थानों के अलावा शरीर में कुछ ऐसी इन्द्रियाँ भी हैं, जिनसे आदमी को विशेष-रूप से बाहरी ज्ञान हासिल होता है। इन्हें ज्ञान-इन्द्रियाँ कहते हैं और यह हैं **आँख** (देखने के लिए), **कान** (सुनने के लिए), **खाल** (छूना या छूया जाना अनुभव करने के लिए), **नाक** (सूघने के लिए) और **जीभ** (चखने के लिए)।

शरीर के अंग—

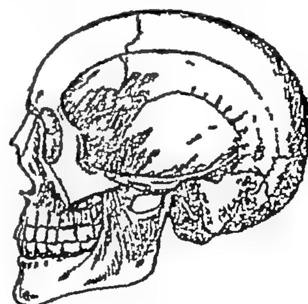
ऊपर शरीर के अन्दर के सारे प्रबंधों के बारे में बताया गया है। यह भी बताया गया कि एक एक प्रकार के प्रबध के लिए जो अग-समूह है उसको सस्थान कहते हैं। हर सस्थान के कुछ जरूरी अंगों के नाम भी ऊपर आ गये हैं। अब सरसरी तौर पर शरीर के सभी अगो की जगह और नाम बताये जायँगे।

शरीर के चार बड़े हिस्से किये जा सकते हैं—

(१) सिर, (२) गर्दन, (३) धड़ और (४) ऊपर-नीचे की शाखाएँ (भुजाएँ और पैर)।

सिर

सिर के हिस्से **खोपड़ी**, जिसमें दिमाग रखा है, और **चेहरा** है। फिर सिर में ही दो **आँखें** और आँखो के बीच में ऊपर की तरफ़ **नाक** है। आँखों के ऊपर वाले बालों को **भव** और भवो के ऊपर और सिर के बालो के नीचे के हिस्से को **ललाट** कहते हैं। ठीक नाक के नीचे **मुँह** है और मुँह के अगल-बगल **गाल** है। मुँह ऊपर-नीचे के दो **होठों** के मिलने से बद होता और उनके अलग होने से खुलता है। ऊपर का होठ ऊपर के **जाबड़े** से लगा है और नीचे का होठ नीचे के **जाबड़े** से। फिर मुँह के अन्दर जाबडो से **दाँत** जड़े हैं। निचले होठ के नीचे **ठुड्डी** (ठोड़ी) है। दाँतो की जड़ों को **मसूढ़े** कहते हैं। ऊपर के दाँतो के पीछे **तालू** है, जिसका अगला भाग सख्त और पिछला मुलायम होता है। तालू के पीछे एक लटकती सी चीज़ रहती है, जिसे **कहुआ** (**कौव्वा या घुंडी**) कहते हैं। दाँतो के बीच में, खास कर निचले दाँतों के पीछे **जीभ** है। जीभ की जड के अगल-बगल दोनों ओर दो दो मेहरावे हैं, जिनके बीच में दोनों ओर दो छोटी-छोटी गुठलियाँ हैं। इन्हें गले की **कौड़ी** कहते हैं। फिर इन कौडियो के पीछे **गला**



खोपड़ी। चित्र न० ५

या **कंठ** है। कंठों के ऊपर के हिस्से में मुलायम तालू के पीछे और ऊपर नाकों के छेद या **नकने** हैं। जीभ की जड़ के पीछे

हवा की नली (स्वरयंत्र) और उसके पीछे भोजन की नली है। सिर में ही आँखो के पीछे की ओर कान हैं। कान और ललाट के बीच का हिस्सा कनपटी है।

गर्दन

गर्दन के अन्दर बीच में स्वरयंत्र है। फिर उससे लगी नीचे की ओर एक कडी नली है, जिसे टेंटुआ कहते हैं। इन्हीं नलियो मे होकर हवा फेफडो में जाती है। टेंटुआ के पीछे भोजन की नली है। गर्दन के पिछले हिस्से में ठीक बीचो-बीच टटोलने से कडी चीजें मालूम होती हैं। वे रीढ़ की हड्डियाँ हैं।

धड़

धड के दो हिस्से हैं—(१) छाती (वक्षस्थल) और (२) उदर (पेट पेडू) । इन दोनो हिस्सो के बीच में एक चौड़ी मांस की पेशी (वक्ष-उदर-मध्य पेशी या महाप्राचीरा, diaphragm) है, जो इन दोनो हिस्से को एक दूसरे से अलग करती है।

छाती के हिस्से मे एक हड्डी के पिंजड़े जैसा बना हुआ है। यह पिंजडा दोनो ओर की हँसली की हड्डियों (अक्षक, collar-bone), दोनो ओर बारह बारह पसलियों (ribs) और बीच की छाती की हड्डी (वक्षोऽस्थि, sternum) से बना है। छाती के बाहरी भाग में सामने की ओर हँसली के नीचे और उससे कुछ दूर पर स्तन हैं। छाती के पिछले हिस्से को पीठ और पीठ के ऊपरी भाग में कधों के पास वाले कुछ ऊँचे हिस्सों को खवे कहते

हैं। पीठ के बीचो-बीच गर्दन की तरफ से आई और ऊपर से नीचे जाती हुई रीढ़ की हड्डियाँ मालूम होती हैं।

छाती के अन्दर शरीर के मुख्य अंगों में से तीन अंग हैं। इनमें से दो तो फेफड़े (फुस्फुस) हैं, जिनमें सांस ली हुई हवा आती है और ख़ून को साफ़ करती है। एक फेफड़ा दाहिनी तरफ़ और दूसरा बायीं तरफ़ है। इन दोनों के बीच में दिल (हृदय) है, जो सिकुड़ कर और ढीला हो कर खून को अपने बाहर निकालता और तमाम शरीर में पहुँचाता है।

यह तो हुई छाती के अन्दर के अंगों की बात। अब धड़ के निचले हिस्से, उदर, के अंगों को जानना है। उदर के बाहरी भाग में सामने की ओर नाभि है और पीछे कमर। कमर के बीचो-बीच टटोलने से रीढ़ की हड्डियाँ मालूम होती हैं। उदर के सबसे निचले हिस्से में पुरुष और स्त्री की पहचान के अंग होते हैं, जिनमें पेशाब भी किया जाता है। उदर के अन्दर भी कई बहुत ज़रूरी अंग हैं, जिनसे ख़ास कर भोजन पचाने की क्रिया इत्यादि होती है। ये अंग हैं आमाशय (stomach, पेट की थैली), जिगर (यकृत, liver), प्लीहा (पिल्ही, spleen), क्लोम (pancreas), गुरदे (वृक्क, kidneys) और आँतें (आन्त्र, intestines)। इन अंगों का पूरा वर्णन आगे किया जायगा। यहाँ पर इतना ही कहा जाता है कि इनमें से कुछ अंगों से पाचक रस निकलते हैं, कुछ अंग पाचन-क्रिया करते हैं और कुछ पाख़ाना पेशाब के निकलने में सहायक होते हैं। उदर का निचला हिस्सा कमर की हड्डियों के घेरे के कारण एक कटोरे की तरह है, जिसे वस्तीगह्वर (pelvis) कहते हैं। इस कटोरे में आँतों के नीचे का भाग और पेशाब की

थैली (मूत्राशय, urinary bladder) है। इसी घिरे हुए हिस्से में वह अग भी हैं, जिनसे बच्चा पैदा होता है। मर्दों मे पेशाब की थैली के पीछे वीर्य की थैलियाँ (शुक्राशय, seminal vesicle) और स्त्रियो में उसी जगह पर बच्चेदानी (गर्भाशय, uterus) रहते हैं।

सिर और धड की बनावटों को देखते हुए कहना पडता है कि शरीर मे कई गड्ढे (गर्त्त, cavities) हैं और हर गड्ढे में शरीर के कई जरूरी अंग हैं। सिर के गड्डे मे दिमाग है, पीठ की तरफ के गड्ढे में रीढ है, पसलियो से बने छाती के गड्ढे में दिल है और उदर के गड्ढे मे आमाशय, यकृत इत्यादि अग हैं। यह भी समझने की बात है कि जरूरी अग अच्छे सुरक्षित स्थान में पड़े हैं।

ऊपर-नीचे की शाखाएँ

ऊपर की शाखाएँ दोनों भुजाएँ, हाथ, और नीचे की शाखाएँ दोनों टाँगें हैं। दाहिनी भुजा छाती की दाहिनी ओर और बायीं भुजा बायीं ओर है। भुजा का ऊपरी हिस्सा, जो गर्दन के पास रहता है, कुछ उभरा हुआ, चौडा और मोटा होता है। उसे कंधा (स्कंध, shoulder) कहते हैं। उसी के नीचे भुजा का ऊपरी भाग ऊपर की बाहु (upper arm) है। बाहु के नीचे कोहनी (elbow), कोहनी के नीचे आगे की बाँह या भुजा (अग्रबाहु, fore-arm) और आगे की बाँह के नीचे हाथ (hand) है। आगे की बाँह और हाथ के नीचे के हिस्से को कलाई या पहुँचा (wrist) कहते हैं। हाथ के निचले मुलायम हिस्से

को हथेली (करतल, palm) कहते हैं। इससे लगी हुई पाँच उँगलियाँ (fingers) होती हैं। सब से मोटी उँगली अँगूठा है। अँगूठा के पास तर्जनी है। सब से छोटी उँगली कनिष्ठा और उसकी पास वाली अनामिका कहलाती है। अक्सर इसी में अँगूठी पहनी जाती है। बीच वाली उँगली का नाम मध्यमा है। हर उँगली में कुछ हिस्से होते हैं, जहाँ से उँगली मुड़ती है। इनको पोर या पोरें कहते हैं। अँगूठे में दो पोर और बाक़ी सब उँगलियों में तीन-तीन हैं। कंधे के नीचे, बाहु और छाती के बीच के गड्ढे को बग़ल कहते हैं।

बहुत कुछ इसी तरह नीचे की शाखाएँ भी हैं। उदर के नीचे दोनों ओर लटकती हुई टाँगें हैं। टाँग के ऊपरी हिस्से को, जो उदर और घुटने (knee) के बीच होता है, जाँघ (उरु, thigh) कहते हैं। जाँघ उदर पर ऊपर को मुड़ सकती है। जाँघ का पिछला हिस्सा कूल्हा (hip) है। घुटने के नीचे असली टाँग हैं। टाँग के नीचे पैर (पद, foot) है। टाँग और पैर के बीच के हिस्से को टखना (ankle) कहते हैं। टखने के सहारे पैर आगे-पीछे को मुड़ता है। पैर का निचला हिस्सा तलवा (तला, sole) और, हाथ की तरह, इसमें भी पाँच उँगलियाँ (toes) हैं।

शरीर के अंगों का काम—

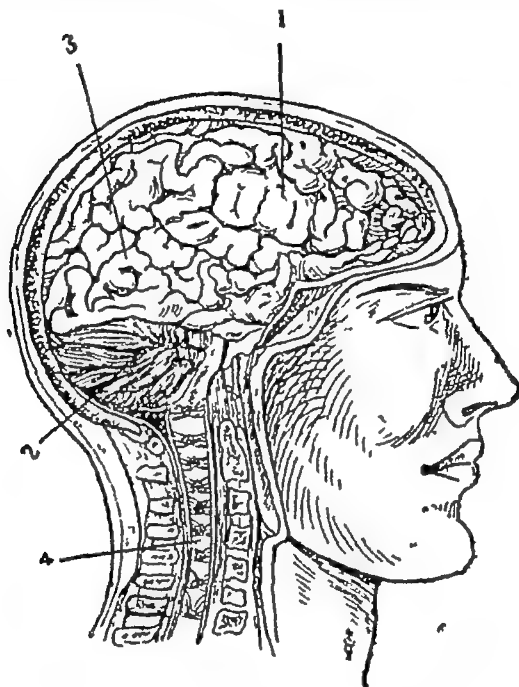
ऊपर की बातों को पढने से अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि शरीर की सब आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शरीर में प्रबंध है। शरीर को पुष्टि और जीवन के लिए सभी अंगों में ख़ून पहुँचाने का इन्तज़ाम (प्रबंध) है। ख़ून खाये हुए भोजन से बनता है। भोजनों को पचाने के लिए आमाशय, जिगर, क्लोम इत्यादि अंग अपना अपना काम करते रहते हैं। फिर उनसे बने ख़ून

को सारे शरीर में पहुँचाने के लिए दिल दिन-रात मेहनत करता है; खून सारे शरीर का चक्कर लगाकर साफ होने के लिए फेफड़ों में वापस आता है। यहाँ साँस के साथ ली हुई हवा के आक्सीजन (ओगजन, oxygen) से मिलकर खून साफ होता और दिल में आता है, और फिर वहाँ से सारे शरीर मे भेजा जाता है। खून के विकार बाहर निकलती हुई साँस के साथ बाहर फेक दिये जाते हैं। पर शरीर मे एक इसी तरह का विकार नही होता। खून बनते समय और उसके पहले-पहल दिल में जाते समय भी उसकी सफाई होती है और उस समय जो विकार निकलता है वह बहुत कुछ पेशाब के रूप में बाहर निकल जाता है। फिर भोजन का जो हिस्सा शरीर के काम का नही रहता यह आँत के सहारे पाखाने के रूप में निकल जाता है। माँसपेशियो के अन्दर का विकार ऊपरी खाल-द्वारा पसीने के रूप में निकल जाता है। इस तरह यह साफ समझ में आ जाता है कि शरीर के बने रहने के लिए और उसके अन्दर के सब विकारों को बाहर निकाल कर उसको साफ रखने का पूरा पूरा प्रबंध शरीर में है। इन्हीं दो बातो—(१) पुष्टि और (२) सफ़ाई— पर शरीर का जीवन और अच्छाई (स्वास्थ्य) निर्भर है। शरीर की अन्दरूनी क्रियाओं के सबध में सभी जरूरी बातें आगे बताई जायँगी।

शरीर के कामों को कौन संचालित करता है ?

यह भी सोचने की बात है कि शरीर के अन्दर जो इतने प्रकार के काम दिन-रात होते रहते हैं उनको संचालित कौन करता है ? किसकी आज्ञा से सभी अग अपना काम करते हैं ? यह सचालन-क्रिया स्नायु (वात नाड़ी) और स्नायु-जाल द्वारा होती है। स्नायु का प्रधान-केन्द्र दिमाग है और उसी का फैलाव रीढ़ के अन्दर

पडी हुई सुषुम्ना (spinal cord) नाडी है। सुषुम्ना से निकलते हुए स्नायु-जाल तमाम शरीर में फैले हैं। वे प्रधान केन्द्र की आज्ञा सभी अगो तक पहुँचाते और बाहर से आई हुई खबरो को प्रधान-केन्द्र में



दिमाग़ और उसके नीचे जाने वाली सुषुम्ना। चित्र नं० ६

भेजते हैं। इसी तरह संचालन का काम भी बहुत अच्छाई के साथ चलता रहता है।

इन सब बातों से पता चलता है कि शरीर सभी तरह भरा-पूरा और अपना काम खुद ही चला लेने के योग्य है।

शरीर की बनावट

ऊपरी दृष्टि से शरीर की रचना—

अगर कोई सिर्फ ऊपरी दृष्टि से शरीर की बनावट समझना चाहे तो उसे शरीर के किसी हिस्से को अच्छी तरह चीड-फाड कर देखना होगा। चीरने के नाम से ही कुछ डर और कुछ घृणा सी मालूम होती है, पर जो डाक्टरी सीखते हैं या वैसे भी शरीर की बनावट को अच्छी तरह समझना चाहते हैं उनके लिये मुर्दे को चीर कर देखना ज़रूरी है।

अगर हम किसी मुर्दे की टाँग या बाँह चीरें तो पहले हमें शरीर के सब से ऊपरी ढक्कन, जिसे खाल कहते हैं, चीरना होगा खाल को चिमटों के सहारे छुडाने से हमें मालूम हो जायगा कि खाल शरीर के और हिस्सों पर खोल या गिलाफ की तरह नहीं रखी है बल्कि इस तरह अपने नीचे की चीज़ो से लगी है जिस तरह फल का छिलका गूदे से सटा-जुड़ा रहता है। एक बात और है, खाल के कटते ही खून निकलने लगता है। पर हमने तो मुर्दे की खाल काटी है। मुर्दे में खून नहीं निकलता।

बहुत से लोग यह समझते होंगे कि खाल के नीचे माँस है पर, ऐसा नही है हम देखेंगे कि खाल को माँस से चिपकाने के लिए कुछ पीली-पीली चिकनी सी चीज़ है। यह **चर्बी** (**वसा,** fat) खाल के ठीक नीचे मोटे आदमियो में मोटी और दुबलो में पतली चर्बी की तह होती है और यह भी खाल की तरह अलग उठाई जा सकती है इस चर्बी को अच्छी तरह काटने से पता चलेगा कि चर्बी के छोटे छोटे टुकड़े कुछ **डोरों** (**सूत्र,** fibre) में अटके रहते

हैं। ये डोरे भी एक दूसरे से मिलकर एक जाली से बुन देते हैं और इसी जाली में चर्बी के टुकड़े फसे होते हैं। इस जाली का दूसरा नाम **झिल्ली** (**कला,** membiane) है। चर्बी लगी रहने के कारण इस झिल्ली को **चर्बी की झिल्ली** (**वसामय झिल्ली**) कहते हैं।

अगर इस चर्बी की झिल्ली की हम पूरी जाँच करें तो उसमें कुछ और पतले पतले डोरे (सूत्र) हमें मिलेंगे। ये डोरे वे नहीं हैं, जिनसे यह झिल्ली (जाली) बनी है। ये कुछ और हैं। ये खींचने पर आसानी से नहीं टूटते। ये स्नायु (वात, नाड़ी, nerve) की शाखाएँ हैं, जिनका कुछ वर्णन पहले आ चुका है और जो दिमाग (प्रधान केन्द्र) से निकली मोटी मोटी स्नायु-शाखाओं से निकल कर खाल तक पहुँची हैं। इन्हीं के सहारे शरीर के बाहरी हिस्से की खबरें दिमाग तक पहुँचती हैं और दिमाग की आज्ञा सब अंगों को मिलती है। इन डोरों को **स्नायु-सूत्र** (**वात-सूत्र,** nerve fibre) कहते हैं।

इन डोरों के अलावा कुछ और डोरियाँ भी हैं, जो खाल और चर्बी के बीच में हैं या चर्बी के अन्दर हैं। ये डोरियाँ खोखली होती हैं और एक तरह की **ख़ून की नलियाँ** हैं।

चर्बी की झिल्ली की तह को हटाने से उसके नीचे लाल लाल मास दिखेगा। मास को ऊपर से ढके हुए पतली झिल्ली रहती है, जिसमें चर्बी नहीं रहती। इसे **मांस को ढकने वाली** (**मांस-आवरक,** fascia) **झिल्ली** कहते हैं। यह झिल्ली भी पतले डोरों से बनी होती है। मांस छोटे छोटे टुकड़ो में बँटा रहता है। ये टुकड़े कुछ डोरों के सहारे आपस में जुटे रहते हैं। अलग अलग मांस के टुकड़ो को **मांसपेशी (पेशी,** muscle) कहते हैं। एक

मांसपेशी दूसरी से कुछ मोटे डोरे (सूत्र) से जुटी रहती है। इस डोरे को सौत्रिक तन्तु (fibrous tissue) कहते हैं।

जिस तरह हमने खाल और चर्बी के आस-पास डोरियाँ देखी थीं, जिनमें से कुछ स्नायु-सूत्र थी और कुछ खून की नलियाँ, उसी तरह मांसपेशियों के बीच मे या उन से निकलती या अन्दर जाती हुई कुछ सफेद डोरियाँ मिलेंगी। इनमे कुछ मोटी और कुछ पतली होती हैं। फिर कुछ खोखली और कुछ कडी होती हैं। खोखली डोरियाँ ख़ून की नलियाँ हैं और कडी स्नायु-रज्जुएँ (nerves) हैं। खाल के पास वाले स्नायु-सूत्र इन्हीं स्नायु रज्जुओं से निकल कर गये हैं। इन खून और स्नायु की डोरियो के फैलाव को देख कर पता चलता है कि शरीर के सभी हिस्से में खून पहुँचाने का प्रबन्ध है और साथ ही सभी हिस्से का लगाव स्नायु-सूत्र और स्नायु द्वारा दिमाग से है।

मासपेशी के नीचे हड्डी है लेकिन जिस तरह मांस एक झिल्ली से ढका है, उसी तरह हड्डी के ऊपर भी झिल्ली है, जो उसको ढके हुए हैं। इसे हड्डी को ढकने वाली (अस्थ्यावरक, अस्थिवेष्ट, periosteum) झिल्ली कहते हैं। अगर हड्डी को हम आरी से काटे तो हम देखेंगे कि वह खोखली है और उसके अन्दर कुछ पीली गुलाबी सी चिकनी चीज है, जिसे मज्जा कहते हैं।

बस, शरीर के अन्दर इतनी ही चीजें हैं।

शरीर कई तरह के तन्तुओं से बना है—

यह तो समझा कि शरीर में सब से ऊपर खाल, खाल के नीचे चर्बी की झिल्ली और उसके अन्दर स्नायु-सूत्र और खून की नलियाँ

फिर मांस को ढकने वाली झिल्ली और मांस, साथ ही मांस के अन्दर स्नायु और ख़ून की नलियाँ, तब हड्डी को ढकने वाली झिल्ली और सबसे अन्त में हड्डी (अपने अन्दर के गूदा, मज्जा के साथ) है। लेकिन सवाल यह है कि ये चीज़ें किस पदार्थ से बनी हैं।

शरीर के अन्दर जितनी भी चीज़ें हैं, जितने भी अंग या अवयव हैं, सभी एक या कई तरह के पदार्थों से बने हैं, जिन्हें तन्तु (पट्ठा, रेशा, धातु, tissue) कहते हैं। आशय यह है कि शरीर के सभी हिस्से तन्तुओं से बने हैं, पर तन्तु कई तरह के हैं। दिमाग और स्नायुओं में एक तरह का तन्तु है और मांसपेशियों में दूसरी तरह का। इसी तरह हड्डियों के बनाने वाले तन्तु कुछ और ही हैं। यह जानना चाहिए कि अलग अलग तन्तुओं के अलग अलग काम हैं। और जो काम एक तन्तु कर सकता है वह दूसरा नहीं कर सकता। शरीर में इतने तरह के तन्तु पाये जाते हैं :—

(१) **मांस-तन्तु** (muscular tissue), जिनसे मांस या मांस-पेशियाँ बनी हैं। शरीर के किसी हिस्से में हरकत या गति तभी होती है, जबकि वहाँ की मांसपेशी सिकुड़ती है। इसलिए अवसर पर सिकुड़ना और फिर ज्यों का त्यों हो जाना मांस-तन्तु का विशेष काम है।

(२) **स्नायु-तन्तु** (**वात-तन्तु** nervous tissue), जिससे दिमाग और दिमाग से निकले हुए स्नायु के डोरे या डोरियाँ बनी हैं। ये डोरे-डोरियाँ दिमाग की आज्ञा अंगों को और अंगों की बातें दिमाग़ तक पहुँचाती हैं। आज्ञा ले जाना, सूचना ले आना सोचना-विचारना स्नायु-तन्तु के विशेष गुण हैं। हम जानते हैं कि सोचने का काम दिमाग़ के सिवा और कोई अंग नहीं कर सकता

और यह इसीलिए सम्भव है कि जिस तन्तु से दिमाग बना है उस का वही विशेष काम है।

(३) जोड़ने वाला तन्तु (बंधक तन्तु, connective tissue) एक अंग को दूसरे अंग से लगा रखने का काम इसी तन्तु का है। इस तरह के तन्तु शरीर के सभी अंगों में पाये जाते हैं। हरेक हड्डी और हरेक मांसपेशी इससे ढकी रहती है और एक अंग के बनाने में जितने पदार्थ लगते हैं वे सब इन्हीं तन्तुओं से एक दूसरे से बँधे रहते हैं। बहुतों को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि हड्डी और कारटिलेज (सुक्ति, cartilage, एक तरह का कड़ा फिर भी लचीला पदार्थ। उदाहरण के लिए कान का बाहरी हिस्सा कारटिलेज का बना होता है) भी एक तरह के बंधक तन्तु हैं। लेकिन यह अचम्भे की बात नहीं है। हड्डी शरीर के कोमल भागों को सधा रखती है और शरीर में हरकत पैदा करने वाली मांसपेशियाँ हड्डियों से ही लगी रहती हैं। झिल्लियाँ, जो मांस-पेशियों और हड्डियों को ढकी रखती हैं, जिनके बारे में हम ऊपर पढ़ आये हैं, इन्हीं बंधक तन्तुओं से बनी हैं। ख़ून भी एक प्रकार का बंधक तन्तु है। यह और भी अचम्भे की बात है, लेकिन ख़ून एक अंग का दूसरे अंग से एक विशेष ढंग से संबंध कराता है। यह ख़ून ही है, जो एक अंग से ख़ूराक लेकर दूसरे अंगों में पहुँचाता है और फिर कई अंगों से विकार इकट्ठा करके ऐसे अंगों (फेफड़े इत्यादि) में ले जाता है, जो उस विकार को शरीर के बाहर निकाल देते हैं। अगर ख़ून के सहारे इस तरह के संबंध का प्रबंध न रहे तो शरीर एक क्षण भी नहीं चल सकता।

(४) बाहरी हिस्से को ढकने वाला तन्तु (पृष्ठाच्छादक तन्तु, epithelial tissue)—यह तन्तु शरीर के बाहरी भाग में

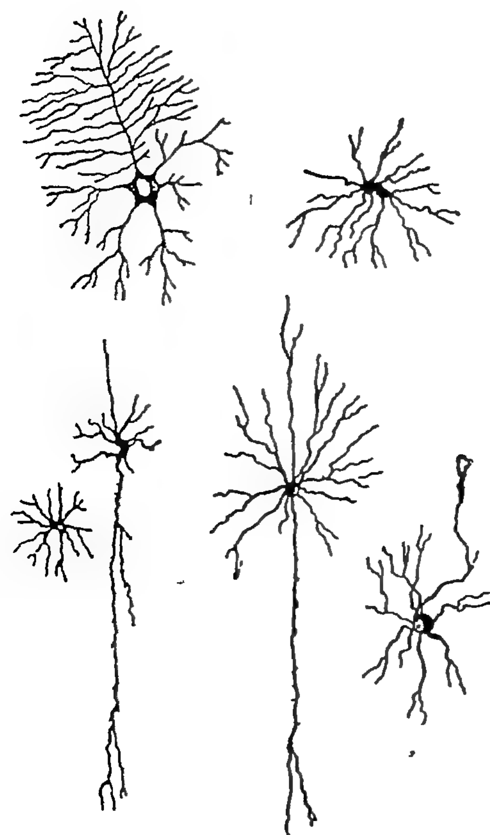
रहता है। खाल का ऊपरी भाग इसी तन्तु से बना है। होठो और गालों के भीतरी हिस्से, जो लाल दिखते हैं, इसी तन्तु से ढके हैं। मुँह से शुरू होकर पाखाने के रास्ते तक जाने वाली भोजन की नली के भीतरी भाग मे आदि से अन्त तक यही तन्तु है। शरीर के अन्दर जितनी थैलियाँ और नालियाँ हैं उन सबो के भीतरी सतह पर यही तन्तु रहता है। जहाँ कहीं भी चिकनी लगातार चलने वाली सतह है वहाँ यही तन्तु पाया जाता है।

तन्तु सेलों से बने हैं—

अगर किसी तन्तु की अच्छी तरह जाँच की जाय तो मालूम होगा कि वह **सेलों (कोष,** cell) से बना है। **सेल** क्या है? सेल वह विचित्र जीता-जागता पदार्थ है, जो शरीर के तन्तु-तन्तु, इसलिए अंग-अंग, में पाया जाता है। अगर कोई किसी पक्की इमारत के बारे में पूछे कि यह किस चीज़ से बनी है तो उसका उत्तर होगा, ईंटो से। वैसे तो इमारत में चूना, सुर्खी, लकड़ी, लोहे इत्यादि और भी कई चीज़ें लगी हैं, पर ईंट ही वह एक मात्र असल पदार्थ है, जिससे बनी हुई वह इमारत कही जायगी। उसी तरह यह शरीर भी, उसका अंग-प्रत्यंग, सेलों से बना कहा जायगा। सेल ही वह एकमात्र असल पदार्थ है, जिससे बना हुआ यह शरीर कहा जायगा। सेल को कुछ लोग हिन्दी भाषा में 'कोष' या 'कोषाणु' कहते हैं, पर हम उसे 'सेल' ही कहेंगे।

ऊपर हम पढ़ आये हैं कि शरीर के तन्तु-तन्तु मे सेल पाये जाते हैं। इसका मतलब यह है कि शरीर तन्तुओ से बना है और तन्तु सेलों से बने हैं। यह बताया गया है कि हर तन्तु की अपनी अपनी विशेषता, अपना अपना काम, है। किसी भी तन्तु की विशेषता उसके बनाने वाले सेलों की विशेषता से होती है। जिस तरह किसी सभ्य समाज या सुसंगठित संस्था में सदस्यों के काम अलग अलग

के रास्ते तक जाती है) की दीवारें इन्हीं बिना धारी के सेलों से बनी होती हैं। इनके सिकुडने से मुँह में खाया हुआ भोजन दब दब कर धीरे धीरे आगे बढ़ता है और आमाशय (पेट) और आँतो में से होता हुआ अन्त में जब कि उससे शरीर-पोषक द्रव्य खींच लिया जाता है, पाख़ाने के रूप में निकल जाता है। ये सेल मूत्राशय की दीवारों में भी पाये जाते हैं। दिल के बनाने वाले माँस-पेशियों के सेल धारीदार होते हैं, पर वे और धारीदार सेलों की तरह आदमी की इच्छा के वश में नहीं हैं और न वे उतने बड़े ही होते हैं। दिल वाले सेल बहुत मेहनती मज़दूरों की तरह अपना काम दिन-रात करते रहते हैं। इन्हीं के बार-बार सिकुड़ने और ढीले होने से दिल सिकुड़ सिकुड़ कर तमाम शरीर मे ख़ून को पम्प करता रहता है।



स्नायुयों के बनाने वाले सेल। चित्र नं० ८

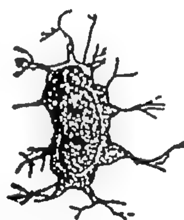
स्नायुयों के बनाने वाले सेल (nerve cells)—

इन्ही सेलों से दिमाग और सुषुम्ना (spinal cord) और उससे

निकले हुए स्नायु-जाल बने हैं। हर सेल में एक बीच का हिस्सा होता है, जो कुछ ठोस होता है। इससे बहुत सी शाखाएँ निकलती हैं, जो इधर उधर फैली रहती हैं और अक्सर दूसरे सेलों की शाखाओं से उलझी सी रहती हैं। यह सेल अच्छे सीखे-पढ़े काम करने वालो की तरह अपना काम करते हैं और आवश्यकतानुसार ख़बरें पहुँचाते हैं। यह बहुत तेज़ी से अपना काम करते हैं और शरीर के हर हिस्से की बातें दिमाग तक पहुँचाते और दिमाग़ की आज्ञा विविध अगो तक ले जाते हैं। सोचने-विचारने, तर्क-वितर्क करने और समझने का काम इन्हीं सेलो का है।

इसी तरह और सेल भी हैं, जिनसे जोड़ने वाले तन्तु (बन्धक तन्तु (connected tissue), हड्डियाँ, ख़ून और बाहरी हिस्सो को ढकने वाले तन्तु (epdithetnal tissue) इत्यादि बने हैं।

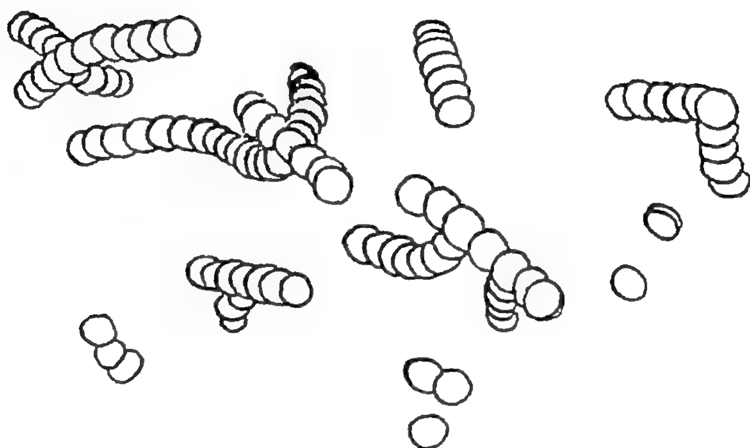
हड्डी के बनाने वाले सेल बहुत छोटे और उखड़-खबड़े आकार के होते हैं। वे ख़ून की नलियों के चारो तरफ़ और आस-पास वृत्तों (दायरो) में इकट्ठे होते हैं और उन्हीं नलियो से अपने लिये रस खीचते हैं। इन सेलों का एक विशेष गुण यह है कि यह अपने को चूने की दीवारों से घेर लेते हैं और इस तरह मिल-जुलकर शरीर को सधा रखने वाला ढाँचा तैयार करते हैं।



हड्डी-सेल। चित्र न० ६

ख़ून के बनाने वाले सेल भी शरीर के लिए उपयोगी हैं। वे मिल-जुल कर तन्तु नहीं तैयार करते बल्कि पानी की तरह एक तरल पदाथ में, जिसका अपना कोई ख़ास रंग नहीं होता, तैरते रहते हैं। यह सेल दो तरह के होते हैं—लाल और सफ़ेद। लाल सेल छोटे छोटे गोल पदार्थ हैं। वे असल में कुछ पीले रंग के होते हैं, पर

उनकी संख्या इतनी अधिक होती है कि उनके कारण वह तरल, जिसमें वे तैरते रहते हैं और जो खून कहा जा सकता है, सुन्दर लाल रंग का दीखता है। ये लाल सेल फेफड़े से ली हुई आक्सीजन गैस (oxygen gass) को दूसरे सेलों तक पहुँचाने और इस तरह उनके जीने में सहायक होते हैं।



खून का लाल सेल। चित्र नं० १०

सफेद सेल की संख्या बहुत कम होती है। उसका आकार तालाब के पानी में तैरने वाले एक-सेल-धारी जीव 'अमीबा' के आकार सा होता है। अमीबा की तरह यह सफेद सेल भी अपना आकार बराबर बदलता रहता है और अक्सर अपने को दबाकर बहुत बारीक खून की नलियों से होकर निकल जाता है। जिस तरह अमीबा अपने खाद्य-पदार्थ (भोजन) के चारो तरफ़ फैल और लिपट कर उसको चट कर जाता है उसी तरह यह सफेद सेल भी खून के बाहर से आये हुए विकारो और विजातीय द्रव्यों को खा

जाता है। ये सेल सचमुच चौकीदारों का काम करते हैं और बाहर से आकर शरीर में घुसने वाले शत्रुओं का नाश करते हैं।

सेलों की चैतन्यता—

ऊपर जो सेलों का वर्णन किया गया है उससे अच्छी तरह मालूम होता है कि सेल चैतन्य अर्थात् जीते-जागते जीव हैं। इनमें जीवन के सभी लक्षण मौजूद (विद्यमान) हैं। साधारणतः जीवन के पाँच लक्षण माने जाते हैं :—

(१) उत्तेजना—बाहरी बातों से प्रभावित होकर सिकुड़ना, फैलना, जागना, चिढ़ना, हटना इत्यादि। यह बातें मुर्दों में नहीं पाई जातीं।

(२) एकीकरण—भोजन करना, भोजन को पचाना और उसको अपने शरीर के साथ एक कर लेना और भोजन से पाई हुई शक्ति से अपना काम चलाना। मुर्दा ये काम नहीं कर सकता।

(३) वृद्धि, बढ़ना—जिन पदार्थों में जीवन है वे ही बढ़ते हैं। जीते बच्चे का शरीर बढ़ता है, मरे बच्चे का नहीं। जीते पौदे बढ़ते हैं, सूखे मरे पौदे नहीं बढ़ते।

(४) संतानोत्पादन—संतान पैदा करना, अपनी तरह दूसरा जीव तैयार कर सकना—उदाहरण के लिए किसी फल के वृक्ष को लिया जा सकता है। उस वृक्ष में बहुत से फल लगते हैं और उन्हीं फलों की गुठलियों या बीजों से और वृक्ष तैयार होते हैं। यह काम हरे-भरे जीते वृक्ष से ही हो सकता है, सूखे, मरे, वृक्ष से नहीं। जीते आदमी के संतान होती है, मुर्दा संतान पैदा नहीं कर सकता।

(५) अपने अन्दर के विकार को निकाल सकना—यह सबो को अच्छी तरह मालूम है कि मुर्दा न तो पाखाना-पेशाब कर सकता है न अपनी साँस के साथ अपने शरीर के अन्दर के विकार निकाल सकता है। जीवधारी ही ऐसा कर सकता है।

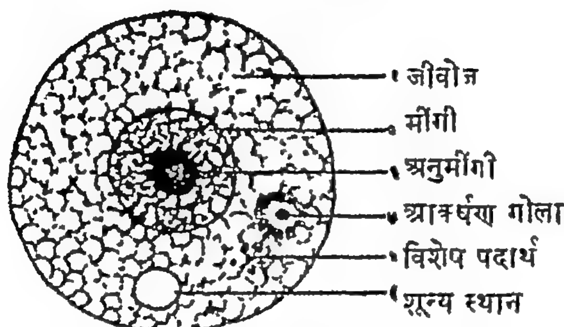
ऊपर बताये हुए पाँचों लक्षण शरीर के बनाने वाले सभी सेल मे पाये जाते हैं। इसी से शरीर में भी चैतन्यता रहती है। सच पूछिए तो शरीर की तन्दुरुस्ती उसके अन्दर के हर सेल, हर तन्तु, की तन्दुरुस्ती पर निर्भर है। सेल की तन्दुरुस्ती अच्छे खून पर निर्भर है और अच्छा खून तभी बनता है जब कि अच्छा भोजन खाया जाय, वह भोजन अच्छी तरह पच जाय और उसका बचा खुचा अंश शरीर के बाहर निकाला जाय; साथ ही खुले में रह कर साफ़ हवा साँस के साथ फेफड़ों में पहुँचाई जाय और उचित मात्रा में कसरत और आराम किया जाय। जिन लोगो को पुरानी और बहुत दिनों तक चलने वाली बीमारी, जैसे दमा, गठिया, यक्ष्मा इत्यादि होती है उनके शरीर का हर सेल बीमार होता है। उचित उपचार से सेलो की अवस्था सुधरती है और फिर शरीर भी स्वस्थ्य होता है।

सेलो की चैतन्यता का हाल जान कर उनके महत्व को कभी न भूलना चाहिए।

सेल की बनावट—

सेल की बनावट समझने के लिए भी ख़ुर्दबीन का प्रयोग करना होगा। सेल जिस पदार्थ से बना होता है उसे जीवोज (protoplasm) कह सकते हैं। जीवोज के बीच में ज़रा गाढ़ा पदार्थ होता है। उसे मींगी (nucleus) कहते हैं। सेल का असली भाग यह

मींगी ही है, उसी में चैतन्यता रहती है। मींगी के भीतर एक छोटा सा विंदु दिखाई देता है। उसे **अनुमींगी** कहते हैं। जीवोज में मींगी के अतिरिक्त एक और तरह का विंदु दिखाई देता है,



सेल का बनाने वाला जीवोज। चित्र न० ११

जिसके चारों ओर पहिए के आरे की तरह रेखाएँ रहती हैं। उसे **आकर्पण गोला** (centrosome) कहते हैं। इसके अलावा सेल में और भी कई चीजें रहती हैं और इन सबों के रहने का फल यही है कि सेल एक जीता-जागता पदार्थ होता है।

एक दूसरी दृष्टि से शरीर की बनावट—

ऊपर बताई गई बातों से यह स्पष्ट है कि शरीर बहुत से अवयवों, अगो का समूह है, प्रत्येक अवयव तन्तुओं से बना है और तन्तुएँ सेलों से निर्मित हुए हैं। लेकिन शरीर की बनावट के सबंध में एक दूसरा दृष्टिकोण भी है। वह दृष्टिकोण रसायन शास्त्र के जानने वालो का है। रसायन शास्त्र के जानने वाले कहते हैं कि मनुष्य का शरीर बहुत से रासायनिक पदार्थों से बना है। साधारणतः वे पदार्थ ये हैं—

आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, कार्बन, कैलशियम (चूना) फासफोरस, सल्फर (गंधक), क्लोरीन, पोटैशियम, सोडियम मैगने-

शियम, और आयरन (लोहा)। शरीर में सब से ज्यादा मात्रा में आक्सीजन, उससे कम कार्बन, उससे कम हाइड्रोजन, हाइड्रोजन से कम नाइट्रोजन को छोड़ कर बाक़ी सब पदार्थ और सब से कम नाइट्रोजन पाया जाता है। इन ऊपर बताये पदार्थों में से कभी कुछ और कभी कुछ आपस में मिल-जुल कर विशेष पदार्थ बनाते हैं और यही विशेष पदार्थ शरीर में पाये जाते हैं।

एक बात स्पष्ट है कि शरीर में जो कुछ विशेष पदार्थ पाये जाते हैं वे सभी खाये हुए पदार्थों से बनते हैं। कुछ विशेष पदार्थों से शरीर में गर्मी पैदा होती है, जिससे काम करने की शक्ति प्राप्त होती है, और कुछ से माँसपेशियों के बनने में सहारा मिलता है। आवश्यकता यह है कि खाने-पीने के विषय में बचपन से ही साव-धानी वर्त्ती जाय, जिससे शरीर के अन्दर शुद्ध, तनदुरुस्त रखने और बढ़ाने वाले पदार्थ पहुँचे और शरीर के तन्तु और सेल अच्छी हालत में रहे।

हड्डियों का ढाँचा

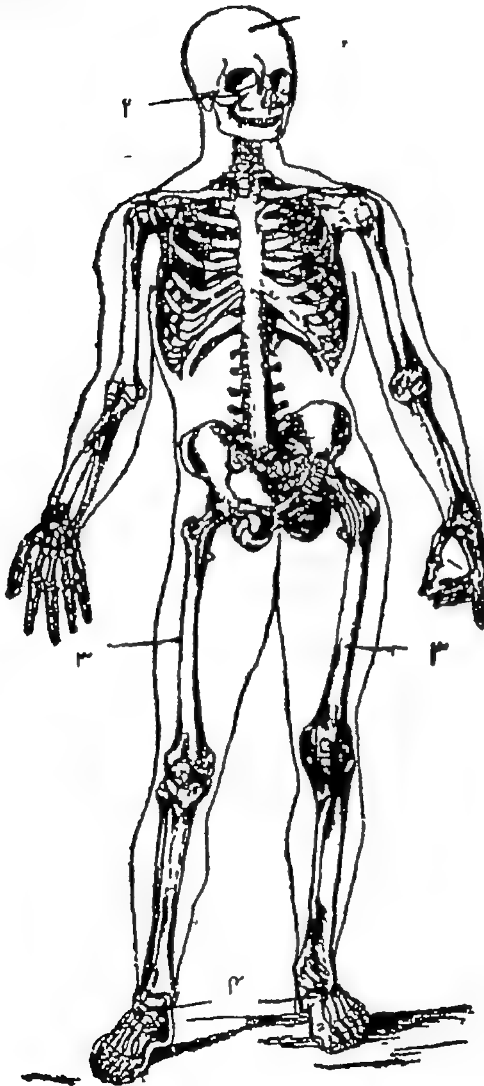
अगर हम शरीर से खाल, मांस, पुट्ठे इत्यादि सबको काट-छाँट कर निकाल दें तो हड्डियाँ ही हड्डियाँ देख पड़ेंगी। वैसे भी अगर शरीर के किसी भी हिस्से को टटोला जाय तो खाल के नीचे मांस और मांस के नीचे सख्त हड्डियाँ मिलेंगी, लेकिन सारे शरीर के ऊपर से खाल, मांस और तन्तुओं को अलग कर देने से हड्डियों की बनी एक ठठरी रह जायगी, जो देखने में बहुत डरावनी मालूम होगी। यह ठठरी शरीर का ढाँचा है, जिसके सहारे शरीर, जैसा कि हम उसे देखते हैं, सधा रहता है। इस ढाँचे को **कंकाल या अस्थि-पंजर** (skeleton) भी कहते हैं और इसके टुकड़ों को **हड्डियाँ या अस्थियाँ**।

हड्डियों का ढाँचा शरीर को साधे तो रखता है, पर ऐसा नहीं है कि किसी मकान की ठठरी की तरह बिलकुल सीधा और अचल हो। शरीर के ढाँचे में यही खूबी है कि वह जगह-जगह पर मुड़ता है, जिससे हम विशेष विशेष अंगों को इच्छानुसार मोड़ और घुमा सकते हैं। अगर यह ढाँचा ऊपर से नीचे तक बिल्कुल ही कठोर और अचल होता तो न तो उंगलियाँ उठतीं, न हाथ घूमते, न पैर खिसकते और न गर्दन मुड़ती। लेकिन ऐसा नहीं है। यह ढाँचा सख्त है सही, फिर भी ऐसा बना है कि कई जगहों से मुड़ सकता है।

ढाँचे की विशेषता—

इस ढाँचे की मजबूती और स्थान स्थान का लचीलापन दोनों ही सराहनीय और ताज्जुब में डालने वाले हैं। हम जानते

हैं कि।।राममूर्ति या ताराबाई जैसे बलशाली पुरुष या स्त्री



शरीर के अन्दर हड्डियों का ढ़ाँचा। चित्र नं० १२

अपनी छाती पर हाथी खड़ा करती हैं और आदमियो से लदी गाड़ियो को निकलवाती हैं। यह तभी हो सकता है जब कि शरीर के अन्दर की हड्डियाँ स्वभावतः बहुत ज्यादा मज़बूत हो या कसरत इत्यादि से उनमें इतनी सहनशक्ति आ जाय कि हाथी के बोझ से भी वे न टूटें। हम यह भी जानते हैं कि खेल-तमाशे दिखाने वाले नट या सरकस में काम करने वाले लड़के लड़कियाँ अपने शरीर को अक्सर तोड़ मरोड़ कर इस तरह बना लेती हैं मानो शरीर में हड्डी है नहीं। यही इस ढाँचे की विशेषता है। यह सख्त भी है और लोचदार भी।

बहुत सी हड्डियाँ क्यों हैं ?

हमे यह मालूम है कि हड्डियो की ठठरी सिर से लेकर पैर तक फैली है, जिसका मतलब है कि शरीर में बहुत सी हड्डियाँ हैं। सारे शरीर में सब मिलाकर बहुत सी हड्डियाँ हैं ही, एक एक अंग में भी कई हड्डियाँ हैं। यह अलग अलग हड्डियाँ मिलकर उस अग के संचालन या उसके काम के पूरा होने में सहायक होती हैं। ऐसा क्यो है ? माना कि अलग अलग अग में अलग अलग हड्डियाँ होनी चाहिए पर एक अंग मे तो एक ही हड्डी हो सकती थी। लेकिन ऐसा नहीं है, एक एक अग के बनने में भी कई हड्डियो ने सहयोग दिया है। यह सचमुच बड़े मार्के की बात है। अगर एक अग में एक ही हड्डी रहती और चोट चपेट से वह टूट जाती तो वह अग बिलकुल बेकार हो जाता। कई हड्डियों के रहने से जब किसी ख़ास भाग या हड्डी में चोट लगती है तो उसमें तकलीफ तो रहती है पर सारा अग बेकार नही हो जाता। फिर उचित उपायों से उस हड्डी के जुट जाने या ठीक हो जाने पर वह अग ज्यों का त्यों हो जाता है।

सारे शरीर में कई हड्डियो के रहने का एक कारण और भी है। उससे सारे ढाँचे को मज़बूती मिलती है। इस ढाँचे के हिस्से एक

दूसरे से जोड़ों (सन्धियाँ) के सहारे जुटे हुए हैं, इसलिए यह ढाँचा एक ही बड़ी हड्डी के घने ढाँचे से कहीं ज्यादा मजबूत है।

हड्डियाँ क्या करती हैं ?

अब हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि हड्डियों के घने इस ढाँचे का क्या काम है।

हम पढ चुके हैं कि इस ढाँचे से शरीर सधा रहता है और उसके आकार में गडबड़ी नहीं होती। अगर शरीर में हड्डियाँ न होती तो वह सीधा खडा नहीं हो सकता था और न उनमें बल ही रहता। यह तो इस ढाँचे का एक बहुत जरूरी काम है, लेकिन इसके अलावा दो और काम हैं, जो कम जरूरी नहीं हैं।

कई हड्डियो के मिल जाने से शरीर में कई जगह खाने या पिंजड़े से बन गये हैं, जिन्हें हम कोष्ठ कह सकते हैं। इन कोष्ठो में शरीर के कई जरूरी अंग पड़े हैं, जैसे खोपड़ी के कोष्ट में दिमाग है, छाती के कोष्ठ में दिल और फेफड़े हैं। हड्डी के बने मजबूत खानों या कोष्ठो में पड़े रहने से ये अंग सुरक्षित रहते हैं। अगर ऐसा न हो तो ये अंग बात की बात मे टूट-फूट या कट जायँ और शरीर बिल्कुल बेकार हो जाय।

हड्डियों का तीसरा काम यह है कि कई स्थानों पर पेशियो (पुट्ठे, muscles) से जुटी रहने के कारण वे शरीर में हरकत, चाल (गति) पैदा करती हैं। हम आगे पढ़ेंगे कि पेशियाँ हड्डियों से लगी हैं और जब कभी फैलती या सिकुड़ती हैं, जिससे शरीर हरकत करता है, हिलता-डुलता और मुड़ता है। अगर शरीर में सिर्फ हड्डियाँ ही हो तो शरीर बराबर सीधा-सीधा ही रहे।

ढाँचे के तीन ख़ास हिस्से—

अगर हम हड्डियों के ढाँचे को बाहर से अच्छी तरह देखें तो पता चलेगा कि इसमें तीन मुख्य विभाग हैं।

सबसे पहला हिस्सा **खोपड़ी** (skull) है। इस खोपड़ी के मजबूत कोष्ठ में शरीर का सबसे जरूरी अंग **दिमाग** (मस्तिष्क) है। इसी हिस्से में चेहरे की हड्डियाँ भी हैं, जिनके घरों में **आँखें** और **नाक** पड़ी हैं, और फिर **जबड़े** भी हैं, जिनसे दाँत लगे हुए हैं।

दूसरा हिस्सा **धड़** (trunk) है, जिसके बीच मे **रीढ़** या **मेरुदण्ड** (vertebial column) है। रीढ़ गर्दन से लेकर कमर तक लंबी लंबी फैली है। इसमें कई हड्डियाँ हैं, जो एक दूसरे पर रखी सी हैं। यह रीढ़ शरीर में पड़े एक बहुत जरूरी खंभे की तरह है, जिससे ढाँचे के और और हिस्से किसी न किसी तरह लगे हुए हैं। यह जरा रोचक विषय है और हम संक्षेप मे यह समझाने की चेष्टा करेंगे कि और और अंग रीढ़ से किस तरह लगे हैं। देखो, रीढ़ के ऊपर **खोपड़ी** रखी है। फिर इसकी हड्डियो से जुड़ी हुई **पसलियाँ** हैं, जो छाती के चारों ओर फैलती हुई सामने को **छाती की हड्डी** (**वक्षोऽस्थि,** sternum) से जुड़ी हैं। इस तरह हड्डियों का एक पिंजड़ा सा बन गया है, जिसके अन्दर दिल और फेफड़े हैं। पसलियों से ऊपर सामने की ओर **हँसलियाँ** (**अक्षक,** collar bones) और पीठ की तरफ **खवे** (**स्कंधास्थि,** shoulder blades) रीढ़ से लगे हैं। इन्हीं खवों से **भुजाओं की हड्डियाँ** लटकती हैं। रीढ़ के निचले हिस्से से **कमर की हड्डियाँ** (hip bones) जुटी हुई हैं। इन हड्डियो के बने खोखले में पाचन यंत्र और आँतें पड़ी हैं और इन्हीं हड्डियों के दोनों ओर **टाँगों की हड्डियाँ** लगी हुई हैं। फिर रीढ़ की हड्डियों के खोखले मे दिमाग से लेकर नीचे तक सुषुम्ना (स्नायु की मुख्य धड़) पड़ी

हुई है, जिससे स्नायु-जाल (nervous system) निकल कर शरीर में फैला हुआ है। इस तरह हमने देख लिया कि रीढ़ की हड्डियों से न सिर्फ़ खोपड़ी और भुजाओ और टाँगों की हड्डियाँ जुड़ी हैं बल्कि किसी न किसी तरह खोपड़ी, दिल, फेफड़े, पाचन यन्त्र और आंत जैसे अंग भी संबधित हैं। रीढ़ से ही स्नायु जाल भी संबध रखता है। सचमुच रीढ़ शरीर का आधार है।

ढाँचे का तीसरा हिस्सा **ऊपर और नीचे के अवयव** (upper and lower extremeties , limbs) हैं। ऊपर के अवयव **भुजाएँ** हैं और नीचे के अवयव **पैर**। इनकी हड्डियाँ ढाँचे का तीसरा हिस्सा है। इन्ही दो अवयवो के सहारे हम ससार में काम-काज करते और चलते-फिरते हैं।

ऊपर बताये ढाँचे के तीन मुख्य विभागो का सविस्तार हाल आगे बताया जायगा।

हड्डियों की संख्या—

शरीर के ढाँचे में सब मिलाकर २०६ हड्डियाँ हैं। वे सारे शरीर में इस तरह बँटी हैं :—

(१) खोपड़ी—ऊपर के हिस्से में ८, चेहरे में १४—कुल २२

(२) रीढ़—ऊपर से नीचे तक इसके पाँच हिस्से हैं। पहले तीन हिस्सो मे २४ हड्डियाँ हैं और चौथे और पाँचवें को यद्यपि उनमें (५+४) ९ छोटी छोटी हड्डियाँ हैं, पूरी पूरी २ हड्डियाँ मानते हैं। इस तरह रीढ़ में २६ हड्डियाँ हैं।

(३) ऊपर के अवयव, भुजायें—हर भुजा में ३२ हड्डियाँ हैं, इसलिए दोनों में ६४ हुईं।

(४) नीचे के अवयव, पैर—हर पैर में ३१ हड्डियाँ हैं, इसलिए दोनो में ६२ हुईं।

(५) छाती में—२५

ये १९९ हड्डियाँ हुईं । इनके अलावा गर्दन में (स्वर यंत्र और ठोढ़ी के बीच) १ हड्डी और दोनो कानो में (३+३) ६ हड्डियाँ हैं। इस तरह कुल मिलाकर सारे शरीर मे २०६ हड्डियाँ हैं।

बच्चे और जवानों का हड्डियों में कुछ भेद –

जवानों की अपेक्षा बच्चे के शरीर में हड्डियो की सख्या कुछ ज्यादा होती है। ऊपर बताया गया है कि खोपड़ी में २२ हड्डियाँ होती हैं। यह जवान आदमियो की खोपडी का हाल है। बहुत छोटे बच्चे की खोपड़ी में ज्यादा हड्डियाँ होती हैं। इसका कारण यह है कि बच्चे की खोपडी धीरे धीरे बढती है और उसके अन्दर रखा हुआ दिमाग भी बढ़ता और फैलता है। जब बच्चा बड़ा होता है तो कई छोटी छोटी हड्डियाँ जुड जाती हैं, और आगे चलकर २२ ही रहती हैं।

यही हाल रीढ़ के निचले हिस्सों का है। ऊपर कहा गया है कि रीढ़ के पाँच हिस्से हैं। बचपन में इनमें से दो निचले हिस्सो मे एक में ५ और दूसरे में ४ हड्डियाँ अलग अलग रहती हैं। उम्र बढ़ने पर इन दोनों हिस्सो की छोटी छोटी हड्डियाँ जुड जाती हैं, जिससे उन दोनो हिस्सो मे दो ही हड्डियाँ रह जाती हैं।

दूसरा भेद यह है कि जवानो की हड्डियाँ बच्चो की हड्डियो की अपेक्षा कडी होती हैं। जवानों की हड्डियों मे कैलशियम फास्फेट और कैलशियम कारबोनेट (चूने के दो पदार्थ) दो-तिहाई भाग होते हैं और जिलैटीन नामक पदार्थ का एक तिहाई भाग। जिलैटीन से हड्डियों में लचीलापन आता है। बच्चों की हड्डियो में जिलैटीन की ही मात्रा बहुत ज्यादा रहती है। इसी से बच्चो की हड्डियाँ लचीली होती हैं और जल्दी टूटती नहीं। बुड्ढों की

हड्डियों में जिलैटीन की मात्रा बहुत कम रहती है, जिससे उनका लचीलापन जाता रहता है और वे चटखीली हो जाती हैं।

औरतों के शरीर का ढाँचा—

जितनी हड्डियाँ मर्दों के शरीर में होती हैं उतनी ही औरतों के शरीर में होती हैं, पर बनावट में, खास कर कमर की हड्डियो की बनावट में, अन्तर रहता है।

हड्डियों का अकार-प्रकार और उनकी बनावट—

हड्डियो की बनावट और उनके आकार अलग-अलग हैं। कुछ हड्डियाँ चपटी हैं और कुछ गोलाकार। खोपड़ी (cranium) और छाती (sternum) की हड्डियाँ चपटी हैं। कन्धे की हड्डी (scapula) भी चपटी है। चपटी हड्डियाँ वही हैं, जहाँ अन्दर के जरूरी यन्त्रो की रक्षा की जरूरत है। हम जानते हैं कि खोपड़ी के अन्दर दिमाग, शरीर का सबसे जरूरी अवयव है। इसलिए उसकी रक्षा के लिए खोपडी की हड्डी चपटी है। जिन हड्डियो से बहुत सी पेशियाँ (muscles) लगी होती हैं वे भी चपटी होती हैं। कन्धे की हड्डी ऐसी है। उससे बहुत सी पेशियाँ जुड़ी हैं।

भुजाओं और टाँगो की हड्डियाँ लम्बी, गोली और खोखली हैं। ऐसी हड्डियाँ लम्बी तो हैं, पर पोली रहने के कारण हल्की होती हैं। और यह जरूरी है। अगर वे हल्की न हो तो पेशियाँ उन्हें चला-फिरा न सकें।

चपटी और लम्बी हड्डियो के अलावा कुछ हड्डियाँ छोटी होती हैं, जैसे कलाई की हड्डियाँ।

कुछ हड्डियाँ ऐसी हैं, जिनकी गिनती न तो चपटी हड्डियो में हो सकती है और न लम्बी में। उनका आकार कुछ उभरा, कुछ

टेढ़ा मेढ़ा सा होता है। रीढ़ की अलग अलग हड्डियाँ इसी तरह की हैं।

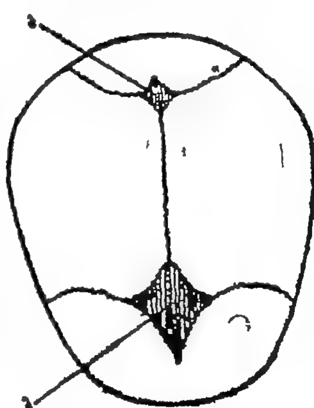
हड्डियों की तन्दुरुस्ती—

बहुत लोग समझते हैं कि हड्डियाँ ज्यो की त्यो बनी रहती हैं, न तो उनकी अपनी तन्दुरुस्ती है और न शरीर की तनदुरुस्ती से उनका कोई सबध है। लेकिन ऐसा समझना भूल है। यह तो हम जान चुके कि जैसे जैसे बच्चा बढ़ता है उसकी हड्डियाँ भी बढ़ती और मजबूत होती हैं। हम यह भी जानते हैं कि जिस तरह शरीर के अन्दर का माँस बहुत से कोषों (cells) से बना है उस तरह हड्डियाँ भी कोषो से बनी हैं। ये कोष बराबर ही बनते, बढ़ने, छीजते, नष्ट होते और फिर बनते रहते हैं। इन कोषों के बनने और बिगाड़ने मे भोजन, कसरत और आराम का बहुत हाथ रहता है। उचित भोजन और जरूरत भर कसरत और आराम से इन कोषों की बनावट और आकार-प्रकार में उन्नति होती है और इससे सारे शरीर की उन्नति होती है। इसलिए यह समझने की बात है कि जिस तरह मांस या स्नायुओं की उन्नति हो सकती है उसी तरह हड्डियो की तनदुरुस्ती भी अच्छी हो सकती है। उचित आहार-विहार करने वाला आदमी जल्द बुड्ढा नहीं होता और अपने शरीर को कम से कम १०० वर्षों तक अच्छी हालत में चला ले जाता है।

खोपड़ी की हड्डियाँ

खोपड़ी गुम्बद के आकार की कुछ चपटी कुछ गोली, अंडे के आकार की होती है। इसके दो हिस्से किये जा सकते हैं—(१) **दिमाग़ का सन्दूकचा** (cranium or brain-box) और (२) **चेहरे की बनाने वाली हड्डियाँ**। पहले हिस्से मे ८ हड्डियाँ हैं और दूसरे मे १४। इस तरह खोपड़ी में कुल २२ हड्डियाँ हुई।

इन हड्डियो में से २१ हड्डियाँ आपस में इस तरह जुड़ी हैं कि वे किसी तरह भी खिसक या टल नहीं सकतीं। हर हड्डी के किनारे पर, जहाँ वह दूसरी हड्डी से मिलती है, आरी के दाँतो के तरह दाँत बने हैं। एक हड्डी के दाँत दूसरी हड्डी के दाँतो में धँस कर इस तरह बैठ जाते हैं कि दोनो हड्डियाँ मजबूती से जुड जाती हैं। इस तरह इक्कीसों हड्डियाँ एक दूसरे से अच्छी तरह जुड़ी हैं। सिर्फ एक हड्डी जो ढीली जुड़ी है और इधरउधर चलती हिलती है, नीचे के जबड़े की हड्डी है।



खोपड़ी की चोटी। चित्र नं० १३

दिमाग़ का सन्दूकचा—

इसके बनाने वाली ८ हड्डियाँ इस तरह हैं:—१ **सामने की हड्डी (ललाटास्थि,** frontal bone), जिससे माथा या मस्तक बनता है।

इसके पीछे कपाल की छत में २ चौडी और चपटी हड्डियाँ एक दाहिनी तरफ और दूसरी बाईं तरफ हैं। इनको **खोपड़ी के अगल बगल की हड्डियाँ** (**पार्श्विकास्थि,** parietal bones) कहते हैं। इन हड्डियों से खोपड़ी की छत और अगल-बगल के अधिक हिस्से बनते हैं और ये सिर की गोलाई के अनुसार दोनों तरफ मुडी रहती हैं।

खोपड़ी के पीछे की तरफ १ हड्डी है, जिसका नाम **खोपड़ी के पीछे की हड्डी** (**पाश्चादस्थि,** occipital bone) है।

अगल-बगल की हड्डियो के नीचे दोनों तरफ हड्डियाँ हैं, जिन्हें **कनपटी की हड्डियाँ** (**शंखास्थि,** temporal bones) कहते हैं। कान के दोनो तरफ के छेद इन्ही हड्डियों में होते हैं। कान के छेदो के पीछे इन हड्डियों में आगे को निकले हुए भाग हैं, जिनके सामने के हिस्सों में गढ़े हैं। इन गढो में हिलने-चलने वाले जाबड़े के दोनो ऊपरी किनारे अच्छी तरह बैठे और लगे हुए हैं।

ऊपर बताई छः हड्डियों से खोपड़ी का अधिक भाग बन जाता है। जो हिस्सा बचा रहता है उसका कुछ हिस्सा **तितली के आकार की हड्डी** (**जतूकास्थि,** sphenoid bone) से भरता है। यह हड्डी पीछे की तरफ पीछे की हड्डी से, अगल-बगल में अगल-बगल वाली हड्डियो से और खोपडी की दूसरी दूसरी हड्डियों से जुडी रहती है।

थोडा सा बचा हुआ हिस्सा १ और हड्डी से भरता है, जिसे **छेदों वाली हड्डी** (**बहुछिद्रास्थि,** ethmoid bone) कहते हैं इस हड्डी का पिछला भाग तितली के आकार की हड्डी से मिला।

रहता है। इसमें चलनी की तरह बहुत से छेद होते हैं, जिनसे होकर स्नायु के बहुत पतले पतले तार नाक के अन्दर जाते हैं।

ऊपर की आठो हड्डियो से खोपडी किस तरह बनी है, यह अब मालूम हो गया। इतना और जानना चाहिए कि खोपडी की नली में बहुत से छेद हैं। सब से बडा छेद नली के पिछले भाग में है, जिससे होकर सुषुम्ना (spinal cord, स्नायु संस्थान की असल धड) दिमाग से निकल कर रीढ़ की नली मे नीचे की ओर जाती है। दूसरे दूसरे छेदो से भी स्नायु की कुछ नाडियाँ बाहर निकलती हैं और खून की नलियाँ आती-जाती रहती हैं।

चेहरे की हड्डियाँ

चेहरे की १४ हड्डियाँ इस तरह हैं :—

क—२ ऊपर के जावड़े की हड्डियाँ (superior maxillary or upper jaw bones)

ख—१ नीचे के जावड़े की हड्डी (inferior maxillary or lower bone)

ग—२ गाल की हड्डियाँ (कपोलास्थि, malar or cheek bones)

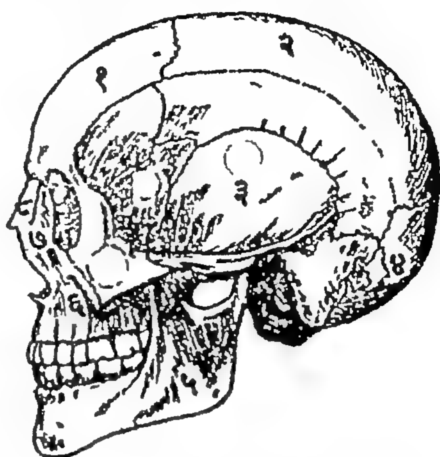
घ—२ तालू की हड्डियाँ (palate bones)

ङ—२ नाक की हड्डियाँ (nasal bones)

च—२ स्पंज की तरह हड्डियाँ (spongy bones)

छ—२ आँसू से सम्बन्ध रखने वाली हड्डियाँ (अश्रवस्थि, lachrymal bones)

ज—१ नाक के परदे वाली हड्डी (vomer bone)



खोपड़ी और चेहरे की कुछ हड्डियाँ। १—सामने की हड्डी। २—अगल बगल की हड्डियों में से एक। ३—कनपटी की हड्डी। ४—पीछे की हड्डी। ५—नीचे के जाबड़े की हड्डी। ६—ऊपर के जाबड़े की हड्डी। ७—आँसू से संबंध रखनेवाली हड्डी। ८—नाक की हड्डी। ९—तितली के आकार की हड्डी। १०—गाल की हड्डी।

चित्र न० १४

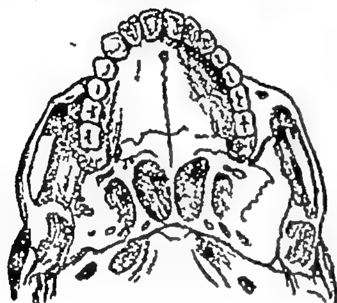
ऊपर के जाबड़े की हड्डियों में से हर हड्डी के निचले हिस्से में ऊपरी दाँतों के लिए १६ गड्ढे होते हैं। इन हड्डियों से मुँह की भीतरी छत का कुछ हिस्सा बनता है।

नीचे के जाबड़े की हड्डी के बीच का हिस्सा ठुड्ढी (ठोढ़ी) कहलाता है। इस हड्डी के ऊपरी किनारे पर १६ निचले दाँतों के लिए गड्ढे होते हैं। यह चेहरे की सबसे बड़ी और मजबूत हड्डी है और जैसा कि ऊपर बताया गया है, खोपड़ी की २२ हड्डियों में यही एक हड्डी है, जो न केवल ऊपर-नीचे हिलती-चलती है बल्कि इस तरफ से उस तरफ भी घूमती है। इसी से भोजन का चबाया जाना सम्भव होता है।

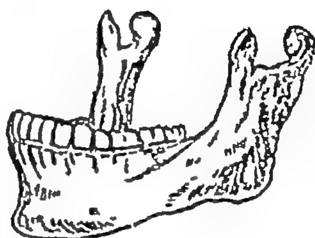
गाल की हड्डियों से ही गाल का ऊपरी हिस्सा कुछ उभरा रहता है।

तालु की हड्डियों से तालु का पिछला हिस्सा बना होता है।

नाक की हड्डियों से नाक का ऊपरी हिस्सा (नाक का पुल, bridge of the nose) बनता है। नाक का शेष निचला भाग कारटिलेज का बना होता है। नाक के ऊपरी हिस्से को बनाने वाली ये हड्डियाँ छोटी छोटी हैं।



ऊपर का जाबड़ा। चित्र नं० १५



नीचे का जाबड़ा। चित्र न० १६

इसी तरह आँसू से सम्बन्ध रखने वाली हड्डियाँ छोटी छोटी हैं। ये आँखो के गड्ढे की भीतरी दीवाल मे दोनों तरफ़ हैं। इन्हीं में रास्ते हैं, जिनसे होकर आँसू आँखों से नाक में जाता है।

स्पज की तरह की हड्डियो में से एक एक नाक के ख़ाने में है। इन हड्डियों की शक्ल सीपी जैसी होती है। नाक के अन्दर उँगली डालकर इन्हें पहचाना जा सकता है। इन हड्डियों के ऊपर नाक के अन्दर की झिल्ली गहरे गुलाबी रग की चढ़ी होती है।

नाक के परदे वाली हड्डी वह है, जो नाक के बीच के परदे के पिछले भाग में रहती है।

× × ×

ठीक खोपडी मे नहीं लेकिन खोपडी से सम्बन्ध रखने वाली ७ और हड्डियाँ हैं। दोनों कानो में ३-३ बहुत छोटी छोटी हड्डियाँ हैं और १ हड्डी कठ में है।

धड़ की हड्डियाँ

धड की हड्डियां में रीढ और छाती की हड्डियों की गिनती है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, रीढ में ३३ हड्डियाँ हैं, लेकिन इनमें से अन्त की ९ हड्डियों में से पहली ५ मिलाकर १ हड्डी हो जाती है और इसी तरह पिछली ४ मिलाकर भी १ हड्डी हो जाती है। इसी लिए रीढ़ की हड्डियाँ २६ मानी जाती हैं। छाती की हड्डियाँ २५ हैं।

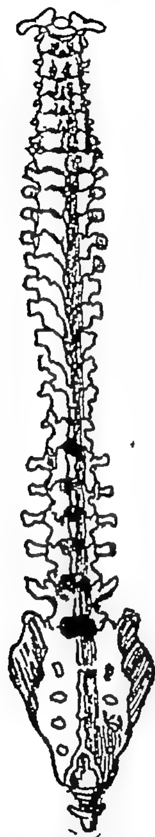
रीढ़—

रीढ़ शरीर का आधार है। इसे मेरु दंड या पृष्ठवंश (vertebral column) भी कहते हैं। यह पीठ के बीचो-बीच गर्दन से शुरू होकर नीचे पाखाने के रास्ते के २-३ इंच ऊपर तक डंडे की तरह चली जाती है। इस डंडे के २६ अलग-अलग टुकडे हैं, जो आपस में बन्धनों से जकडे रहते हैं। रीढ के हर टुकड़े, हर हड्डी, को मोहरा (कशेरुका, vertebra) कहते हैं। इन मोहरों की बनावट, उभरी-उभरी, रुखडी, होती है। एक मोहरा दूसरे पर रखा होता है। बन्धनों और मासपेशियों से जकडे रहने के कारण मोहरे एक दूसरे से जुडे होते हैं।

रीढ की २६ हड्डियों में से ७ गर्दन में, १२ पीठ में, ५ कमर में और बाक़ी २ कमर के निचले हिस्से में रहती हैं। इनके नाम भी उसी हिसाब से हैं—पहली ७ का नाम गर्दन के मोहरे (cervical vertebrae), दूसरी १२ का छाती के पीछे के मोहरे (dorsal vertebrae) और तीसरी ५ का कमर के मोहरे (lumbar

vertebrae) है। बाकी २ में से ऊपर वाली हड्डी का नाम **त्रिक का मोहरा** (sacial vertebiae) और निचली का नाम **पूँछ का मोहरा** (पुच्छास्थि, coccygeal) vertebiea) है। इन पाँचो हिस्सो में से पहले तीन के टुकड़े अलग-अलग हैं और इधर-उधर कुछ घूम सकते हैं। नीचे वाले दो हिस्सों के टुकड़े जुटे हुए और अचल हैं।

छाती के पीछे के १२ मोहरों से छाती के सामने की हड्डियाँ जिन्हें पसलियाँ कहते हैं, लगी हुई हैं। कमर के मोहरों में से सब से नीचे का मोहरा त्रिक के मोहरे पर, जिसकी शक्ल एक बड़े पच्चड की तरह है, रखा हुआ है। त्रिक से कूल्हे की हडडियाँ जिनका वर्णन आगे आवेगा, जुटी हैं।



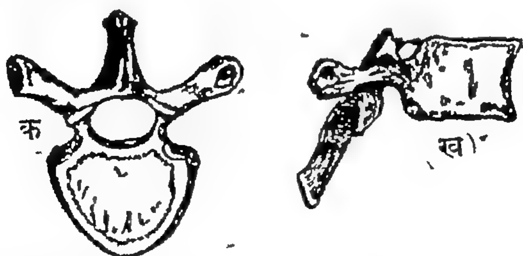
रीढ, पीठ की तरफ़ से। चित्र न० १७



रीढ, बायीं ओर से। चित्र न० १८

पहले और दूसरे मोहरों को छोड़कर और सभी मोहरो के आकार लगभग एक से हैं। मोहरे के आकार को अच्छी तरह समझने के लिए छाती के पीछे के एक मोहरे की जाँच की जा सकती है।

मोहरे की शक्ल एक नगदार अगूठी से कुछ कुछ मिलती है। जिस तरह अँगूठी में नग वाला हिस्सा मोटा और घेरा बनाने वाला हिस्सा पतला होता है उसी तरह मोहरे का अगला हिस्सा मोटा होता है और उससे लगा हुआ एक घेरा होता है, जो जरा पतला होता है। अगले हिस्से को **पिंड** (गात्र, disc) और उससे लगे घेरे को **घेरा** (चक्र, neural arch) कहते हैं। इन दोनों हिस्सों से कई **उभार** (प्रवर्द्धन, projections) निकले रहते हैं। घेरे से तीन उभार निकलते हैं। इनमें से दो उभार घेरे के दोनों तरफ रहते हैं। एक नोकीला उभार घेरे के पिछले भाग में नीचे की तरफ झुका हुआ होता है। रीढ़ की उँगलियों से टटोलने से नुकीला उभार जाने जा सकते हैं। इन्हीं नुकीले उभारों से बन्धन लगे रहते हैं, जिनसे ये मोहरे एक दूसरे से मजबूती से जुड़े रहते हैं। मांसपेशियाँ भी इन उभारो से लगी रहती हैं जिनके सहारे पीठ झुकाई जा सकती है।



एक छाती के पीछे का मोहरा। क—ऊपर से देखने पर, ख - दाहिनी ओर से। चित्र नं० १६

एक मोहरे का पिंड दूसरे मोहरे के पिंड पर रखा रहता है। दो मोहरों के बीच कारटिलेज की गद्दी रहती है, जिस से मोहरे आपस में रगड़ नहीं खाते और उछलने-कूदने या गिरने से हड्डियों के टकराने या खटखटाने का डर नहीं रहता।

मोहरों के पिंडो के एक दूसरे के ऊपर टिके रहने से घेरे भी एक दूसरे के ऊपर अच्छी तरह बैठ जाते हैं, जिससे एक नली सी बन जाती है। इसे **रीढ़ की नली** (**कशेरू की नली**, spinal or vertebral canal) कहते हैं। इसी नली में दिमाग से निकल कर स्नायु संस्थान का वह लम्बा हिस्सा आता है, जिसे **सुषुम्ना नाड़ी** (spinal cord) कहते हैं। दो मोहरों के बीच से सुषुम्ना से निकली हुई स्नायु की नाडियाँ बाहर आती और शरीर में फैलती हैं।

सभी हिस्सों के मोहरे लगभग वैसे ही हैं जैसा कि छाती के पीछे का एक मोहरा बताया गया है, पर उनमें जरूरत के खयाल से कुछ भेद होते हैं। नीचे वाले मोहरे ऊपर वाले मोहरों से कुछ बड़े और भारी होते हैं। गर्दन के मोहरे सब से ज्यादा हल्के और कमर के सब से ज्यादा भारी होते हैं और ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योंकि शरीर का भार गर्दन की अपेक्षा कमर के पास बहुत ज्यादा होता है।

मोहरों के हल्के और भारी होने के अलावा (अतिरिक्त) उनमें कुछ और भेद हैं। गर्दन के मोहरों के अगल बगल के उभारों में छेद होते हैं, जिनसे होकर खून की नलियाँ निकलती हैं। छाती के पीछे के मोहरों के नुकीले उभार, जो पीछे की तरफ रहते हैं, बहुत लम्बे होते हैं। इन्हीं १२ मोहरों से छाती की पसलियों की (जिनका वर्णन आगे है) हड्डियाँ जुड़ी रहती हैं। इसलिए इन मोहरों के पिंड के दोनों तरफ और अगल-बगल के उभारों

की नोक के पास चिकने गड्ढे से होते हैं, जहाँ पर पसलियाँ मोहरो से जुड़ती हैं। कमर के मोहरो के सभी उभार मोटे और मजबूत होते हैं।

गर्दन के पहले और दूसरे मोहरों में कुछ विशेषताएँ होती हैं। पहले मोहरे में और मोहरो के पिंड की तरह कोई मोटा भाग नहीं होता। पिंड की जगह एक मेहराब होती है। इसका पिछला नुकीला उभार बहुत ही छोटा होता है इसके ऊपरी हिस्से में दो चिकने उभार से होते हैं, जिन पर खोपड़ी के पीछे की हड्डियाँ टिकी रहती हैं और जिसके सहारे खोपड़ी आगे-पीछे घूमती है।

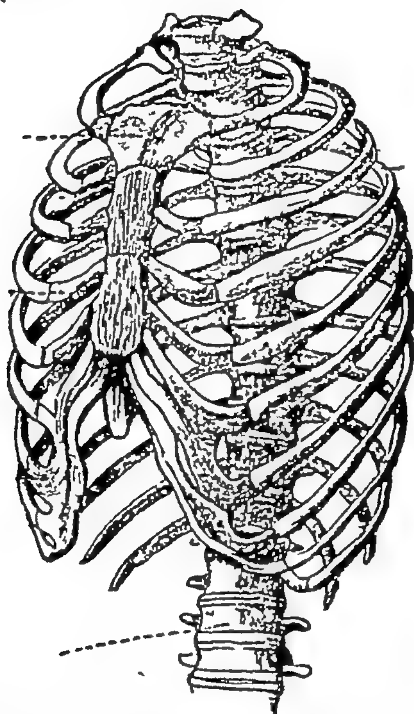
गर्दन के दूसरे मोहरे के ऊपरी हिस्से में दाँत की तरह उभार होते हैं जो पहले मोहरे की मेहराब में अच्छी तरह बैठ जाते हैं। सिर के इधर-उधर घुमाने में यही होता है कि पहले मोहरे पर खोपड़ी टिकी रहती है और दूसरे मोहरे के दाँतों के सहारे वह इधर-उधर घूमती है।

रीढ़ एक सीधे डंडे या खंभे की तरह नहीं है। इसका कुछ हिस्सा आगे निकला और कुछ पीछे धँसा रहता है। गर्दन का हिस्सा पीछे की तरफ़ कुछ धँसा रहता है। छाती के पीछे हिस्से में एक लंबा मेहराबदार गड्ढा सा है, फिर कमर का हिस्सा कुछ पीछे की तरफ़ धँसा है।

छाती की हड्डियाँ

छाती की हड्डियों से एक घेरा सा बन जाता है, जिसे छाती का पिंजड़ा कह सकते हैं। ऊपर बताया गया है कि इस हिस्से में २५ हड्डियाँ रहती हैं। लेकिन अगर एक तरह से देखा जाय तो इस हिस्से में २५ नहीं ३७ हड्डियाँ हैं। बात यह है कि पसलियाँ दोनों तरफ़ १२, १२ अर्थात कुल २४ हैं। ये पीछे रीढ़ के १२ मोहरो से जुड़ी हैं, जिसका वर्णन ऊपर आ चुका है, और आगे की ओर

छाती की १ हड्डी से जुडी है। इस तरह २४ पसलियाँ + १२ मोहरे + १ छाती की हड्डी—कुल मिलाकर ३७ हड्डियाँ हुईं। लेकिन १२ मोहरे रीढ़ की हड्डियो में गिन ली गईं। इसलिए कहा जाता है कि छाती की हड्डियाँ २५ ही हैं।



छाती का पिंजड़ा। ७ जोड़ी पसलियाँ सीधी छाती की हड्डी से जुड़ी हैं। उनके बाद ३ जोड़ी के अगले हिस्से ७ वीं पसली से मिले हैं। बाकी ३ जोड़ी तैरनेवाली पसलियाँ है। चित्र न० २०

इस छाती के पिंजडे में दिल और फेफडे सुरक्षित पड़े हैं। जिगर (यकृत liver), तिल्ली (spleen) और गुर्दे (kidneys) भी, यद्यपि ये उदर में हैं, पसलियों से सुरक्षित रहते हैं।

छाती की हड्डी (वक्षोऽस्थि, sternum) एक चौड़ी हड्डी है,

जो ६-७ इंच लम्बी होती है। इसके ऊपर का हिस्सा कुछ चौड़ा और नीचे का हिस्सा धीरे-धीरे सकरा होता जाता है। इस हड्डी के तीन हिस्से होते हैं। सब से ऊपरी हिस्से मे **हँसली की हड्डियाँ** (collar-bones) दोनों तरफ़ से आकर मिलती हैं। बीच वाले हिस्से मे दोनों तरफ़ से आकर ७,७—कुल १४—पसलियाँ मिलती है। छाती की हड्डी का सबसे निचला हिस्सा कारटिलेज का बना होता है।

पसलियों की सख्या २४ है—दोनो ओर १२, १२। इनमें से दोनों ओर की १२, १२ पसलियाँ पीछे की तरफ रीढ़ मे १२ मोहरों से जुड़ी हैं। आगे की तरफ़ सिर्फ़ १० जोडी पसलियाँ छाती की हड्डी से लगी हैं। बाकी दो जोडी (ग्यारहवी और बारहवी) छोटी हैं और छाती की हड्डी तक नहीं पहुँच पातीं। ये **तैरने वाली पसलियाँ** (floating ribs) कहलाती हैं।

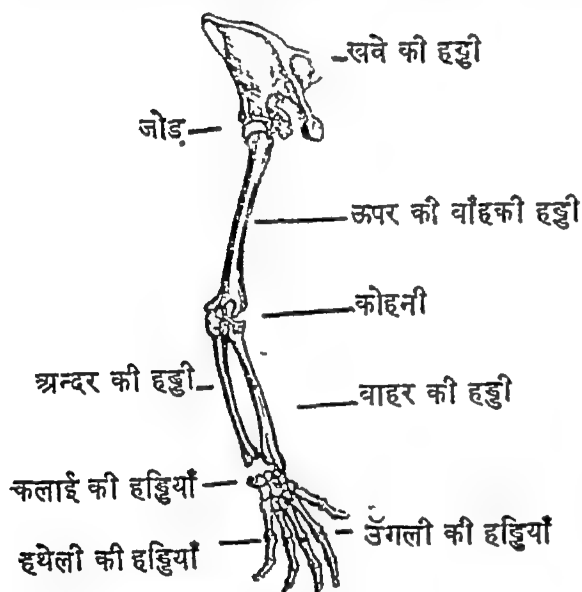
जो १० जोड़ी पसलियाँ छाती की हड्डी से जुडी हैं वे भी उस हड्डी तक नहीं पहुँच पातीं। उस हड्डी तक पहुँचने के कुछ दूर पहले ही उनका अन्त हो जाता है, लेकिन उनके अगले सिरे और छाती की हड्डी के किनारे के बीच में कारटिलेज की पट्टियाँ रहती हैं, जिससे ये १० जोडी पसलियाँ छाती की हड्डी से जुडी समझी जाती हैं। इन १० जोडी पसलियो मे भी केवल ऊपर की ७ जोडी छाती की हड्डी से मिलती है। बाक़ी ३ जोडी का अगला कारटिलेज का हिस्सा एक दूसरे से मिलकर ७वीं पसली के कारटिलेज से बँधा रहता है।

पसलियों के बीच में जो ख़ाली जगहें रहती हैं वे माँसपेशियों से भरी रहती हैं। ये पेशियाँ ऊपर की पसली के नीचे के किनारे से और नीचे की पसली के ऊपरी किनारे से लगी रहती हैं। साँस लेते समय ये पेशियाँ सिकुडती है, जिससे यह हड्डियों का पिंजड़ा ऊपर उठता और नीचे गिरता है।

और कूल्हों के जोड़, गड्ढा-गेंद-जोड होने के कारण बाँह और टाँगों को ज्यादा घूमने का अवसर देते हैं।

हँसली की हड्डी लम्बी और जरा टेढ़ी होती है। यह अन्दर को छाती की हड्डी से और बाहर खवे की हड्डी से जुडी होती है।

खवे की हड्डी चौडी और तिकोनी होती है। इसका चौड़ा हिस्सा खवे में रहता है और मोटा हिस्सा कंधे में। इसी मोटे हिस्से के कोने में वह गड्ढा (glenoid cavity) होता है, जिसमें ऊपरी बाँह का ऊपरी सिरा लगा रहता है। इसी मोटे हिस्से के ऊपरी किनारे पर खवे की हड्डी हँसली की हड्डी से मिलती और जुड़ी रहती है।



ऊपर के अवयव की हड्डियाँ। चित्र न० २१

ऊपर की बाँह की हड्डी (प्रगण्डास्थि, humerus) कंधे और कोहनी के बीच में है। इसका ऊपरी सिरा खवे की हड्डी के गड्ढे में बैठा रहता है और नीचे का सिरा नीचे की बाँह की हड्डियों से मिलकर **कोहनी का जोड़** बनाता है।

नीचे की बाँह (**प्रकोष्ठ,** forearm) में दो हड्डियाँ बराबर

बराबर होती हैं—एक हड्डी बाहर को अँगूठे की ओर (**बहिः प्रकोष्ठास्थि,** radius) और दूसरी अन्दर को कनिष्ठा की ओर (**अन्तः प्रकोष्ठास्थि,** ulna)। जब हथेलियों को ऊपर की तरफ करके फैलाया जाता है तो ये दोनों हड्डियाँ बराबर-बराबर रहती हैं, पर जब इस तरह हथेली घुमाई जाती है कि अँगूठा अन्दर को घूम जाता है तो **बाहर की हड्डी** (radius) **अन्दर की हड्डी** (ulna) के ऊपर आ जाती है।

बाहर की हड्डी का ऊपरी सिरा छोटा पर नीचे का सिरा चौड़ा होता है। अन्दर की हड्डी का ऊपरी सिरा चौड़ा और नीचे का सिरा छोटा होता है। ये दोनों हड्डियाँ ऊपर की ओर ऊपर की बाँह की हड्डी से मिलकर कोहनी बनाते हैं और नीचे की ओर कलाई की हड्डियों से मिली रहती हैं।

कलाई में आठ छोटी-छोटी हड्डियाँ हैं। इन्हें **कलाई की हड्डियाँ** (carpal bones) कहते हैं। ये दो पंक्तियों में सजी और बन्धनों से जुड़ी रहने के कारण अपने स्थान पर अच्छी तरह बैठी रहती हैं। इसी से कलाई में लचीलापन और इधर-उधर ख़ूब घूमने की शक्ति है।

हथेली की पाँच हड्डियाँ (करभास्थि, metacarpal bones) ऊपर की ओर कलाई की हड्डियों से और नीचे **उँगली की हड्डियों** से जुड़ी रहती हैं।

उँगली में कुल मिलाकर १४ हड्डियाँ हैं—अँगूठे में २, बाक़ी ४ में से हरेक में ३।

नीचे के अवयवः—

इस हिस्से की बनावट मामूली तौर पर ऊपर के अवयव की

बनावट की तरह होती है। नीचे के अवयव को पैर * कहते हैं, लेकिन यह हिस्सा असल में जाँघ के कुछ ऊपर से शुरू होता है। इसके भाग हैं कूल्हा, जाँघ, टाँग, टखना, और पैर (टखने के बाद का हिस्सा, जिसमें उंगलियाँ रहती हैं)। इस अवयव में हड्डियाँ इस तरह बँटी हैं :—

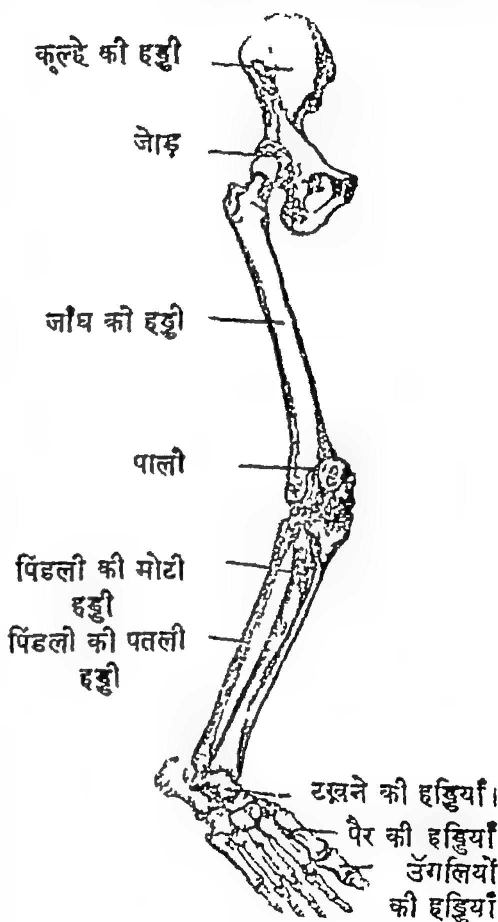
कूल्हे की हड्डी - १, जाँघ की हड्डी—१, घुटने की हड्डी—१; टाँग मे—२, टखने मे ७; पैरो मे ५, उंगलियों में १४। इस तरह एक पैर मे कुल मिलाकर ३१ और दोनो में ६२ हड्डियाँ हुईं। ऊपर के अवयव से भिन्नता इतनी है कि प्रत्येक कलाई में ८ हड्डियाँ होती हैं पर प्रत्येक टखने मे केवल ७।

कूल्हे (**नितम्ब**, hip) मे एक बडी चौडी और विरूप हड्डी होती है। कूल्हे दो हैं। कूल्हे की दोनों हड्डियाँ पीछे की तरफ कमर के नीचे त्रिक (रीढ का ऊपर से चौथा हिस्सा) नामक हड्डी से जुडी रहती है। कूल्हे की दाहिनी हड्डी त्रिक के दाहिनी तरफ और बाईं हड्डी त्रिक के बाईं तरफ रहती है। सामने आकर ये दोनों हडडियाँ एक मध्य रेखा में आपस मे जुडी रहती हैं। इन दोनों हड्डियो के जोड़ के नीचे स्त्री और पुरुष की पहचान के अंग होते हैं। ये दोनों हड्डियाँ त्रिक से जुटी हैं पर त्रिक के नीचे वाली रीढ़ की हड्डी, पुच्छास्थि, से मिली नहीं रहतीं। इन चारों हड्डियों (दो कूल्हे, त्रिक और पुच्छास्थि) के बीच में जो गहरे कटोरे या कढ़ाई का आकार सा बन जाता है उसे **कूल्हे का कटोरा या वस्तिगह्वर** (pelvic girdle) कहते हैं। वस्तिगह्वर उदर की

---

* 'पैर' सब से नीचे के हिस्से को भी कहते हैं, जिसमे उँगलियाँ लगी रहती हैं। यहाँ 'पैर' कूल्हे से लेकर उँगलियों तक के सारे अवयव के लिए आया है।

कोठरी का निचला हिस्सा है। उसमें पुरुष के मूत्राशय, शुक्राशय और मलाशय और स्त्रियों के मूत्राशय, गर्भाशय, मलाशय और दूसरे अंग रहते हैं। स्त्री का वस्तिगह्वर पुरुष के वस्तिगह्वर की अपेक्षा कम गहरा पर ज्यादा चौड़ा और बड़ा होता है।



नीचे के अवयव की हड्डियाँ
चित्र नं० २२

कूल्हे की हड्डी के तीन हिस्से जानने योग्य हैं। ऊपर का चौड़ा हिस्सा (जघनिका, ilium), नीचे का सकरा हिस्सा (कुकुन्दरिका, ischium), जिस के सहारे बैठा जाता है; सामने का चौड़ा हिस्सा (भगास्थि, pubis)। बचपन में ये तीनों हिस्से अलग-अलग दिखते हैं, पर आगे चलकर मजबूती से मिल जाते हैं। ये तीनों हिस्से कूल्हे के बाहरी पृष्ठ पर एक दूसरे से मिलते हैं और इस तरह एक गोल गड्ढा

(वंक्षणोदूखल, acetabulum) बनाते हैं। कूल्हे दो हैं। इसलिए दोनो ओर दो गड्ढे होते हैं। इन्हीं मे दोनो ओर मे आकर दोनों जाँघ की हड्डियों के गोल सिरे अच्छी तरह बैठ जाते हैं। यहाँ भी गेंद-गड्ढा जोड़ का प्रबन्ध है। इस तरह टाँगों के सहारे कूल्हे का कटोरा है और कूल्हे के कटोरे के सहारे उदर के निचले हिस्से के अग (जिनके नाम ऊपर लिखे हैं)।

जाँघ की हड्डी (उर्वस्थि, femur) ऊपर की बाँह की हड्डी की तरह है। यह शरीर में सब से लम्बी और मजबूत हड्डी है। इसका ऊपरी सिरा गेंद की तरह गोला होता है, जो कूल्हे की हड्डी के गड्ढे में टिका रहता है। इसका निचला सिरा चरा फैला रहता है और घुटने पर टाँग की एक हड्डी जंघास्थि से जुड़ा रहता है। यह जोड बहुत मजबूत होता है। यहाँ पर भी एक तिकोनी हड्डी होती है, जिसे पाली (जान्वस्थ, patella) कहते हैं। यह हड्डी हिलाई जा सकती है और जाँघ की हड्डी के निचले सिरे के सामने रहती है। जब टाँग सीधी की जाती है तो दुबले-पतले आदमियों में यह दूर से ही दीखती है।

पैर में (घुटने के नीचे) नीचे की बाँह की तरह दो हड्डी होती हैं। इन मे से एक अँगूठे की तरफ रहती है और दूसरी सब से छोटी उँगली की तरफ। अँगूठे की तरफ वाली पिंडली की मोटी हड्डी (जघास्थि, tibia) और दूसरी पिंडली की पतली हड्डी (अनुजंघास्थि, fibula) कहलाती है। यह दूसरी हड्डी पतली और कमजोर होती है। मोटी हड्डी (जघास्थि) के ऊपर का सिरा नीचे के सिरे से अधिक मोटा और चौडा होता है और घुटने पर जाँघ की हड्डी से मिलता है। इसी जोड़ के सामने और पिंडली की मोटी हड्डी से लगी हुई पाली नाम की हड्डी

रहती है। पिंडली की मोटी हड्डी का निचला सिरा पतला होता है और टखनों की हड्डियों से मिल कर टखने के भीतरी उभार को बनाता है।

पिंडली की पतली हड्डी के ऊपर का सिरा मोटी हड्डी से बँधा रहता है। इसका निचला सिरा टखने की एक हड्डी से मिल कर टखने का बाहरी उभार, गट्टा, बनाता है।

टखने की हड्डियाँ (tarsal bones) गिनती में ७ हैं। इन मे से एक मोटी हड्डी से पिंडली की मोटी हड्डी जुड़ी रहती है। एक दूसरी हड्डी नीचे की तरफ झुकी रहती है और एड़ी बनाती है।

पैर की हड्डियाँ (metatarsal bones) हथेली की हड्डियो की तरह ५ हैं। इन्हीं से **पैर की उँगलियों** की हड्डियाँ लगी रहती हैं। ये १४ हैं—अँगूठे में २ और बाक़ी प्रत्येक उँगली में ३, ३।

हड्डियों के जोड़

हड्डियो के बारे में जो कुछ अब तक बताया गया है उससे मालूम हो गया होगा कि शरीर के अन्दर जो हड्डियों का ढाँचा है उसमे बहुत जगहों पर जोड़ (joints) हैं। ये जोड़ जरूरी हैं क्योंकि इनके बिना न तो हाथ-पैर हिलाये जा सकते हैं और न आदमी उठ-बैठ या चल-फिर सकता है। अगर हड्डियों के ढाँचे में जोड़ न होता तो शरीर बराबर सीधा-सीधा एक काठ के टुकड़े की तरह रहता। विशेषता तो यह है कि शरीर के जिस हिस्से को जिस तरह हिलाने-घुमाने की जरूरत है उसी तरह का जोड़ उस हिस्से की हड्डियो में है।

जहाँ दो या दो से ज़्यादा हड्डियो या कारटिलेजों* के सिरे आपस मे मिलते हैं उस स्थान को जोड़ (सन्धि, joint) कहते हैं, जोड़ साधारणतः दो तरह के होते हैं—(१) पक्के जोड़ (अचल सन्धि, fixed or immoveable joint) और (२) हिलने-

---

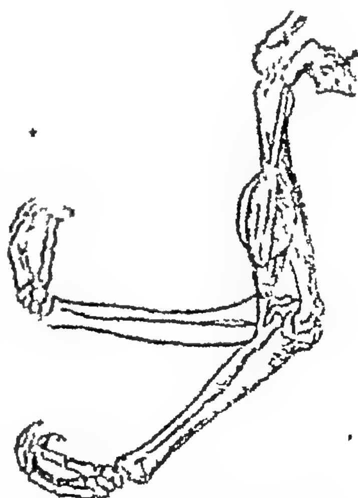
* कारटिलेज, जैसा कि पहले बताया गया है, एक सख्त पर लचीला पदार्थ है। कान का बाहरी हिस्सा कारटिलेज का बना है, जो पतली मांसपेशियों और खाल से ढका रहता है। नाक के आगे का निचला हिस्सा भी कारटिलेज का ही बना है। रीढ के मोहरों के बीच भी कारटिलेज की गद्दियाँ पडी हैं, जिससे हम पीठ को झुका सकते हैं और उछलने-कूदने में कोई धक्का या रगड नहीं मालूम होती। पसलियों के सिरों पर भी जहाँ वे छाती की हड्डी से मिलती हैं, कारटिलेज ही है, जिससे छाती फैलती और सिकुडती है।

घूमने वाला जोड़ (चल सन्धि, moveable joint)। खोपड़ी की हड्डियाँ (नीचे के जबड़े की हड्डी को छोड़ कर) जो आपस में जुड़ी हैं वे पक्के जोड़ के उदाहरण हैं, लेकिन ऊपर की बाहु जहाँ कन्धे की हड्डी से मिलता है या जाँघ की हड्डी जहाँ कूल्हे की हड्डी से जुड़ी रहती है, ये हिलने-घूमने वाले जोड़ के नमूने हैं।

इस तरह जोड़ों के मुख्य दो प्रकार हुए, पर हिलने-घूमने वाला जोड़ भी चार तरह का होता है। वे नीचे बताये जाते हैं :—

(१) गेंद-गड्ढा-जोड़ (ball and socket joint)। इस जोड़ पर एक लम्बी हड्डी का गोल सिरा दूसरी हड्डी के गोल गड्ढे में टिका रहता है। ऊपर इसके दो उदाहरण दिये गये हैं— कन्धे और कूल्हे पर के जोड़। यह जोड़ ऐसा होता है कि आपस में मिली हुई हड्डियाँ चारों तरफ और हर तरफ हिलाई-डुलाई और घुमाई जा सकती हैं।

(२) चूलदार जोड़ (hinge joint)—यह उस जोड़ का नाम है, जिस में जुड़ी हुई हड्डियाँ आगे पीछे, एक दिशा में, घुमाई जा सकती हैं। कोहनी, घुटनों और उंगलियों के जोड़ इसी तरह के हैं। शरीर में इसी तरह के जोड़ अधिक संख्या में हैं। ये आगे-पीछे को मुड़ सकते हैं पर दायें से बायें और बायें से दायें नहीं मोड़े जा सकते और न हिलाये जा सकते हैं।



कोहनी का चूलदार जोड़। चित्र नं० २२

(३) कीलदार जोड़ (pivot joint)—जहाँ ऐसा जोड होता है वहाँ एक हड्डी कील का काम करती है और उस पर दूसरी हड्डी घूमती है। रीढ़ के पहले और दूसरे मोहरे का जोड, जिसके सहारे खोपड़ी इधर से उधर घूमती है, ऐसा ही है।

(४) फिसलने वाला जोड़ (sliding joint)—जिस जोड पर एक हड्डी दूसरी के ऊपर कारटिलेज की गद्दी बीच मे रहने के कारण थोडा फिसलती है वह फिसलने वाला जोड़ है। कलाई की हड्डियो और रीढ़ के मोहरों का आपस में मिला रहना इसी तरह के जोड का उदाहरण है।

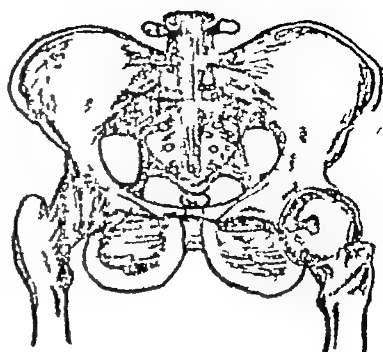
जोड़ पर की हड्डियाँ सफेद सौत्रिक बंधनों (ligament, fibrous band) से बधे रहते हैं। ये बधन सुतली का काम करते हैं और हड्डियों को ठीक स्थान पर रखते हैं। जोड़ो पर माँसपेशियाँ भी रहती हैं। अगर इन को हटाया जाय तो ये बंधन देख पड़ेंगे। माँसपेशियाँ भी हडडियो से एक दूसरे सफेद वधन द्वारा मजबूती से लगी होती हैं। इसको कंडर* या कडरा (tendons) कहते हैं।

हिलने-घूमने वाले जोड़ की बनावट—

जोड़ की जगहो पर बहुत अच्छा प्रबध रहता है, जिस से हड्डियाँ अच्छी तरह और बिना रगड़ खाये हिलती-घूमती हैं। प्रबध यह है कि जोड़ो पर हड्डियो के सिरे चिकने कारटिलेज की तह से ढके रहते हैं। इतना ही नहीं, उनके किनारे किनारे एक पतली चमकदार झिल्ली लगी रहती है, जिससे तेल की तरह एक चिकनी चीज निकलती है। चिकनाई मे स्वयं झिल्ली

---

*कडर बहुत मज़बूत और सख्त, सफ़ेद, रस्से की तरह होते हैं। मुड़े घुटने के नीचे उनको टटोल कर जाना जा सकता है।



कूल्हे की हड्डी से जांघ की हड्डी का जुडना। गेंद-गड्ढा जोड़ का उदाहरण। चित्र नं० २४

और हड्डियों के सिरों पर के कारटिलेज का ऊपरी हिस्सा बराबर तर रहता है। इससे हड्डियाँ आपस में रगड़ नहीं खातीं। यह तेल की सी चीज वही काम करती है, जो मशीन में तेल करता है। बहुत से जोड़ों पर हड्डियों के सिरे दो उल्टी दिशाओं में आकर एक थैली के अन्दर मिलते हैं। यह थैली सौत्रिक तन्तु (fibrous tissues) की बनी होती है और जोड़ की थैली (capsule of the joint, सन्धिकोष) कहलाती है। इसके अन्दर पड़ी रहने से हड्डियाँ अपनी जगह पर रहती हैं। यह थैली बाहर से माँसपेशियों के सहारे मजबूत बनी रहती है।

से यह भी मालूम होता है कि (१) कुछ माँसपेशियाँ मनुष्य की इच्छा के वश हैं और उसकी इच्छा या आज्ञा से ही काम करती हैं, और (२) कुछ ऐसी हैं, जो मनुष्य की इच्छा के वश नहीं हैं। साधारण हालतों में मनुष्य अपनी इच्छा से न तो इसमे गति पैदा कर सकता है और न अपनी आज्ञा से इनकी हरकत को बंद कर सकता है। ये अपना काम अपने ढंग पर करती जाती हैं। असाधारण हालतों मे मनुष्य इन पर अपना प्रभाव डाल सकता है, पर यह इस पुस्तक का विषय नहीं है। यहाँ हम इन्हें मनुष्य की इच्छा के वश नहीं समझेंगे।

जब मनुष्य खाना चाहता है तो उसकी इच्छा होते ही, दिमाग की आज्ञा पाते ही, बाँह की माँसपेशियाँ उसकी हड्डियों को फैला और मोड कर हाथ के सहारे भोजन को मुँह तक पहुँचा देती हैं। इसी तरह चलने, फिरने, बोलने इत्यादि मे माँसपेशियाँ मनुष्य की इच्छा के ही कारण काम करती हैं। पर जैसा कि ऊपर कहा गया है, कुछ ऐसी माँसपेशियाँ हैं, जो मनुष्य की इच्छा के अधीन नहीं हैं। दिल की धड़कन को न तो इच्छा से शुरू किया जा सकता है न रोका जा सकता है। आँतो मे गति होती है, जिसमे खाया हुआ भोजन नीचे को सरकता रहता है। मनुष्य अपनी इच्छा से इस गति को रोक नहीं सकता। तेज़ रोशनी मे आँख की पुतली सिकुड़ कर छोटी हो जाती है, अंधेरे मे वह फैल कर चौडी हो जाती है। इच्छा से यह पुतली छोटी या बड़ी नहीं की जा सकती।

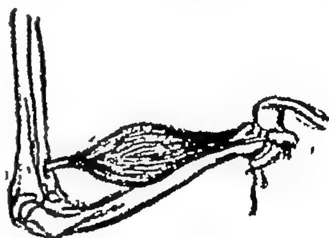
इस तरह माँसपेशियाँ दो तरह की हैं—(१) इच्छाधीन (voluntary) और (२) **स्वाधीन** (involuntary)। शरीर को ढकने वाली लगभग सभी माँसपेशियाँ इच्छाधीन हैं, पर, जैसा कि ऊपर बताया गया है, दिल, आमाशय, आँत और कई भीतरी अंगो की दीवारों की माँसपेशियाँ स्वाधीन हैं।

पेशियों का आकार—

पेशियाँ बहुत तरह की हैं। ये शरीर के भिन्न भिन्न भागो को कई दिशाओ में घुमाती और मोड़ती हैं। कोई पेशी छोटी होती है तो कोई बड़ी, कोई लम्बी होती है तो कोई गोल। आँख की पेशियाँ बहुत छोटी होती हैं। पैर की पेशियाँ बड़ी होती हैं। पेशियो के आकार-प्रकार उनके कामो के अन्दाज़ से हैं।

इच्छाधीन माँसपेशियाँ—

यों तो माँसपेशियाँ, चाहे वे इच्छाधीन हों या स्वाधीन, कई तरह की होती हैं, इच्छाधीन पेशियाँ भी बहुत आकार-प्रकार की हैं। जो हाथ पैर में हैं वे अक्सर बीच में सिरो की अपेक्षा मोटी होती हैं। सिरों पर कंडर (tendons) रहते हैं, जिनके सहारे ये हड्डियों से लगी होती हैं। कुछ पेशियाँ हड्डियो की ऊपरी झिल्ली से ही लगी होती हैं। कंडर के सहारे हड्डियों से बधी पेशियों के सिरों पर अक्सर एक से ज्यादा कंडर रहते हैं। पेशी का एक सिरा हड्डी से जुड़ा रहता है और दूसरा सिरा दूसरी हड्डी से और पेशी जोड़ के ऊपर ऊपर बनी रहती है। जब पेशी सिकुड़ती है तो दोनों हड्डियाँ पास-पास हो जाती हैं। ऊपरी बाँह की **दो सिरों वाली (द्विशिरस्का,** biceps) पेशी की गति देखने और समझने से यह बात साफ़ हो जाती है। यह पेशी ऊपर में खवे की हड्डी (scapula) से लगी रहती है और नीचे निचली बाँह की बाहर की हड्डी (radius) से। इस तरह यह पेशी मारे ऊपरी बाँह, दोनो बाँहों के जोड और निचली बाँह

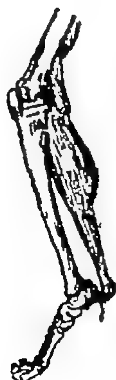


ऊपरी बाँह की दो सिरों वाली पेशी। चित्र न० २७

कोहनी की जोड पर टेक लगाकर यह पेशी सिकुड़ती है, जिससे निचली बाँह फैल जाती है।

खड़ा होना, चलना और दौड़ना—

ऊपर बताई बातो से यह समझ में आ गया होगा कि अंगो में हरकते किस तरह होती हैं। इस सिलसिले में यह समझ लेना भी रोचक होगा कि शरीर किस तरह सीधा सीधा खड़ा होता है और टहलने, दौडने, उछलने आदि की गतियाँ किस तरह होती हैं। बात यह है कि एक गति के होने में एक ही पेशी नहीं बल्कि अक्सर कई पेशियाँ मिलकर काम करती हैं। शरीर को सीधा खड़ा रखने में शरीर के सामने और पीछे की कई पेशियों का पेचीदा प्रबंध रहता है। एक तरफ की पेशी दूसरी तरफ की पेशी के विरुद्ध काम करती है। सामने की पेशियाँ शरीर को आगे की ओर खींचती हैं, और पीछे की पेशियाँ पीछे की ओर। इस तरह दो ओर की पेशियो की विरुद्ध-क्रिया (एक का दूसरे से उलटा काम) का परिणाम यह होता है कि शरीर सीधा रहता है। एक-एक क्रिया को देखने से यह बात और समझ में आ जायगी। शरीर का बोझ टखने की हड्डियो पर पड़ता है, जिससे पैर आगे को गिरने लगता है। लेकिन इसके विरुद्ध पिंडली की बड़ी पेशी की क्रिया होती है। फल यह होता है कि टखने का जोड सीधा और कड़ा रहता है। इसी तरह घुटने का जोड़ सामने



पिंडली की बडी पेशी की क्रिया। चित्र नं० २८

और पीछे की पेशियो की विरुद्ध-क्रियाओ से सीधा बना रहता है। जाँघ के सामने की पेशियाँ शरीर को आगे खींचती हैं पर कमर के पास की पेशियाँ उसको पीछे खींचती रहती हैं। इसी तरह धड़ भी कूल्हे के जोड पर धड से जाँघ तक जाने वाली सामने और पीछे की पेशियों की विरुद्ध-क्रियाओं से टिका रहता है। रीढ़ के अगल-बगल वाली पेशियाँ शरीर को पीछे खींचती हैं, पर पेड़ू और गले की पेशियाँ उसको आगे भी खींचे रहती हैं। सिर गर्दन के पीछे की पेशियों की क्रिया के कारण आगे को गिरने से रुका रहता है। इस तरह सारे शरीर के सामने और पीछे की पेशियो की विरुद्ध-क्रियाएँ शरीर को सीधा रखती हैं। छोटा बच्चा सीधा खड़े होने की कोशिश में अक्सर गिर पडता है। इसका कारण यह है कि उसे पेशियो की क्रियाओ को समझने और ठीक करने में कठिनाई होती है और समय लगता है। ज्योंही उसे वह सीख जाता है बिना कोशिश के वह खड़ा होने लगता है।

इस सबध में यह भी समझना चाहिए कि स्नायु-सस्थान से आई हुई आज्ञा से पेशियाँ सिकुड़ती हैं। अगर किसी तरह सिर पर जोर की चोट लगती है या स्नायु-सस्थान को धक्का पहुँचता है, तो आदमी न सिर्फ बेहोश हो जाता है बल्कि गिर जाता है। ऐसी हालत में दिमाग की आज्ञा या स्नायु की प्रेरणा पेशियो तक नही पहुँचती और वे ढीली पड़ जाती हैं।

चलते समय शरीर का बोझ एक पैर पर रहता है जब कि दूसरा आगे को बढ़ा रहता है। जब कि आगे बढा हुआ पैर जमीन पर गिरता है तो दूसरे पैर की पिंडली की पेशियाँ सिकुड कर शरीर को पजे पर उठाती हैं, जिससे यह पैर उठता और आगे जाता है। इसी तरह जब दायाँ पैर आगे उठता है तो बाँया जमीन पर रहता है। ज्योंही दायाँ जमीन पर टिकता है बाँया

पैर पिंडली की पेशियों के सिकुडने से उठता और आगे बढ़ता है। फिर दायाँ बढता है। इसी तरह दायें बायें पैरो का बारी बारी से आगे-पीछे बढना और टिकना पेशियों के सिकुडने से होता है। तेज़ी से टहलते समय बाँह भी पैरों का साथ देती है। दायें पैर के साथ दाईं बांह और बाईं के साथ बाईं बाँह आगे और पीछे आती-जाती है।



विरुद्ध क्रिया वाली पेशियों के सहारे शरीर का सीधा खड़ा रहना।
चित्र न० २६

दौड़ने में भी वही हरकत होती है, जैसी कि चलने में, लेकिन पेशियाँ बहुत जोर और तेज़ी से सिकुडती हैं, जिससे पैरो की गति तेज होती है, एडी जमीन पर नहीं पड़ती और थोड़ी थोडी देर के लिए दोनो पैर ज़मीन से उठे रहते हैं।

उछलने में दोनो पैरो मे एक साथ हरकत होती है। दोनो पिंडलियों और जाँघो की पेशियाँ एक साथ सिकुडती हैं और टाँगो के एकाएक फैलने से शरीर ऊपर उठकर आगे को जाता है।

पेशियों की बनावट—

पेशियो के बनने मे कई पदार्थ काम मे आते हैं। इनमें तीन-चौथाई भाग पानी और बाक़ी प्रोटीन (एक पदार्थ, जिससे माँस बनता है) और प्राकृतिक नमक होते हैं। अगर पेशियों को दबा

कर निचोड़ा जाय तो निकला हुआ रस थोडी देर में लेई की तरह जम जाता है। मरने पर यह रस जम जाता है, इसी से मुर्दे का शरीर अकड़ जाता है।

मांस पेशियाँ काम करने और फिर उचित आराम पाने से ही अच्छी हालत में रहती हैं। जो माँसवर्द्धक पदार्थ (प्रोटीन) हम खाते हैं, जैसे दूध या बादाम या चना या अंडा या गोश्त, उनसे ही पेशियो की ख़ूराक मिलती और उनकी पुष्टि होती है। उन्हीं से पेशियों मे शक्ति पैदा होती है, जिसमे वे अपना काम करती हैं। उन पदार्थो के खाने से शरीर मे गर्मी भी पैदा होती है।

जब पेशियाँ काम नही करतीं उस समय उनमे एक तरह के माँड़ जैसा पदार्थ अधिक मात्रा में इकट्ठा होता है। काम करते समय यह पदार्थ पेशी के काम आता है और जब पेशी को अधिक काम करना पड़ता है तो इसकी मात्रा भी बहुत कम हो जाती है।

माँसपेशियाँ छूने मे बहुत मुलायम होती हैं। उनमे बहुत सी ख़ून की नलियाँ भी बहती हैं। ख़ून के कारण पेशियो का रग लाल होता है। कभी-कभी पेशियों में चर्बी भी पाई जाती है और अक्सर उनके चारो तरफ़ चर्बी होती है। लेकिन गति माँस के ही कारण होती है।

पेशियों को अच्छी हालत में रखना--

पेशियों को अच्छी हालत में रखने के लिए दो बातें ज़रूरी हैं--(१) भोजन में उचित मात्रा में प्रोटीन (माँसवर्द्धक पदार्थ) का होना और (२) ताक़त भर कसरत। कसरत ऐसी हो, जो अग-अग की पेशियो में हरकत पैदा करे। बहुत से रोजगार ऐसे होते हैं, जिनमें पेशियो की कसरत हो जाता है, पर जो बैठे-बैठे अपना काम करते हैं उनके लिए उचित व्यायाम (कसरत) ज़रूरी

है। जो लोग कसरत नहीं करते उनकी बहुत सी पेशियाँ बेकार पड़ी रहती हैं और शरीर उतना बलवान नहीं हो पाता जितना उसको होना चाहिए। कसरत के साथ-साथ आराम भी बहुत जरूरी है, नहीं तो पेशियाँ जल्द घिस जाती हैं। अच्छा भोजन, साफ हवा, कसरत और आराम, ये बातें मांसपेशियाँ क्या सारे शरीर को अच्छी हालत में रखने के लिए जरूरी हैं।

भोजन

शरीर छोटे छोटे सेलों से बने हुए तन्तुओ और सूत्रो से बना है। हम यह भी पढ चुके हैं कि यह एक मशीन की तरह है और मशीन की तरह काम भी करता है। एक मशीन और हमारे शरीर में भेद यही है कि शरीर अपनी मरम्मत आप कर लेता है और जन्म के बाद कुछ वर्षों तक सभी तरह बढ़ता और उन्नति करता है, पर मशीन न तो अपनी मरम्मत आप कर सकती है और न कभी बढ़ती ही है। वह जैसी बनती है वैसी ही रह जाती है। लेकिन, जैसा कि ऊपर कहा गया है, शरीर मशीन की तरह काम करता रहता है। दिल की धडकन बराबर जारी रहती है और साँस की क्रिया भी चलती रहती है। साथ ही और कई क्रियाएँ बराबर ही होती रहती हैं। ये तो हुए शरीर के अन्दर के काम। शरीर के बाहरी कामों में चलना, दौडना, बातचीत करना इत्यादि हैं। इन कामो में पेशियो के सिकुडने से गति होती है और गति की अवस्था में बहुत से तन्तुओं के सेले टूटते-बिगड़ते और छीजते रहते हैं। इस छीजन का पूरा हो जाना जरूरी है, नहीं तो शरीर बहुत दिनों तक चल नहीं सकता। फिर शरीर को गर्मी भी चाहिए। ये दोनो बातें, शरीर को गर्म रखना और छीजन की पूर्ति, खाये हुए भोजन से ही होती हैं। भोजन से खून बनता है और खून शरीर में घूम-घूम कर अंग-प्रत्यंग को, हरेक सेल को, उसकी खूराक पहुँचा देता है। अगर खून में शरीर को अच्छी हालत में बनाये रखने के लिए सभी पदार्थ हैं तो शरीर तनदुरुस्त रहता और अपने सभी काम ठीक-ठीक करता है, नहीं तो शरीर कमजोर पड़ता जाता है और उसमें तरह-तरह की बीमारियाँ पैदा होती हैं। इसलिए भोजन पर

ध्यान देना बहुत आवश्यक है। ऊपर की बातों को ध्यान में रखते हुए भोजन के उपयोग इतने हो सकते हैं :—

(१) शरीर को गर्म रखना, शक्ति का संचार करना और उसको फुर्तीला बनाना।

(२) शरीर की छीजन को पूरा करना।

(३) शरीर के बढ़ने के लिए आवश्यक पदार्थ देना।

ये तीनो बाते भोजन से होती हैं, पर भोजन के हर पदार्थ में ये तीनो गुण नहीं रहते। कुछ खाने की चीजें ऐसी होती हैं, जिनसे गर्मी और शक्ति मिलती है, कुछ ऐसी हैं जो टूटे-फूटे सेलों की मरम्मत मे सहायक होती हैं। कुछ खाद्य-पदार्थ जीवन-शक्ति को बढ़ाते हैं और कुछ खून को अच्छी अवस्था में रखने में सहायक होते हैं। अगर हम खाद्य पदार्थों की रासायनिक जाँच करें तो हर पदार्थ में ऊपर बताये गुणो मे से एक या कई गुण मिलेंगे। गुणो के अनुसार खाद्य-पदार्थ छः प्रकार के हैं—(१) **श्वेतसार** (carbohydrates), (२) **मॉसवर्धक पदार्थ** (proteins), (३) **चिकनई** (fats), (४) **पानी**, (५) **खनिज नमक** (mineral salts) और (६) **विटामीन** (vitamins, खाद्योज)।

श्वेतसार—

इनमें कार्बन (carbon), हाइड्रोजन (hydrogen) और आक्सीजन (oxygen) का सम्मिश्रण रहता है। इन पदार्थों को अच्छी तरह चबाने से सफेद लेई की तरह चीज बनती है और बहुतो में शुरू से ही और कुछ में अन्त में मिठास मालूम होती है। यह मिठास इसलिए है कि इन पदार्थों में शकर प्रत्यक्ष या छिपी रहती है। **श्वेतसार पदार्थों से शरीर को गर्मी और शक्ति मिलती है।**

श्वेतसार पदार्थों में कई तरह के अनाज, जैसे गेहूँ चावल, जौ, बाजरा इत्यादि, कन्द-भाजी जैसे आलू; फल जैसे केला, अमरूद इत्यादि हैं। इन मे और पदार्थ भी रहते हैं पर श्वेतसार का आधिक्य रहता है। गन्ना, चुकन्दर, छुहाड़ा, खजूर, मुनक्का, अजीर इत्यादि में श्वेतसार अधिक मात्रा में है। गुड़, चीनी श्वेतसार पदार्थ के उदाहरण हैं।

मांसवर्द्धक पदार्थ—

इनमें कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन (nitrogen) और गंधक (sulphur) का सम्मिश्रण रहता है। **इन पदार्थों के काम हैं सेलों और तन्तुओं को बनाना और उनके टूटने-फूटने पर उनकी मरम्मत करना।** इनसे कुछ गर्मी और ताक़त भी मिलती है, पर ऊपर बताये काम इनके मुख्य काम हैं।

अनाज में सब तरह के दलहन, जैसे चना, मसूर, इत्यादि; भाजियों में मटर, लोभिया (बोडा), फलों में गिरीदार मेवे, जैसे बादाम, अखरोट इत्यादि, दूध और दूध के बने पदार्थ जैसे पनीर इत्यादि, मांस, मछली और अंडा मांसवर्द्धक पदार्थ हैं। इनमे दूसरे दूसरे पदार्थ भी रहते हैं, जैसे अखरोट मूंगफली में चिकनई, दूध में चिकनई और शक्कर, पर इनमें प्रोटीन (मांसवर्द्धक पदार्थ) की ही मात्रा अधिक रहती है। इसी तरह गेहूँ में भी, जैसा कि ऊपर बताया गया है, प्रोटीन की कुछ मात्रा रहती है, पर उसमें श्वेतसार का ही आधिक्य है।

चिकनई—

चिकनई देने वाले पदार्थों में भी, श्वेतसार पदार्थों की तरह, कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन रहता है। चिकनई के हर पदार्थ मे एक तरह की चर्बीदार खटाई और ग्लीसरीन का

सम्मिश्रण रहता है। जब किसी भी चिकनाई के पदार्थ पर क्षार (खार) का प्रभाव पड़ता है तो साबुन और ग्लीसरीन बनती है। चिकनाई का मुख्य काम गर्मी और शक्ति देना है। इससे शरीर के गड्ढे भी भरते हैं और शरीर भरा-पूरा, चिकना मालूम होता है।

चिकनाई दो तरह की है। एक वह जो जानवरों से मिलती है, जैसे मक्खन, घी इत्यादि; दूसरी वह जो वनस्पति से मिलती है, जैसे सरसों का तेल, तिल का तेल, नारियल का तेल इत्यादि। जैसा ऊपर बताया गया है, दूध के अन्दर चिकनाई है और अखरोट, बादाम, मूंगफली इत्यादि मेवों में भी चिकनाई है।

पानी—

अपनी असली हालत के अलावा पानी फलों और तरकारियों से और दूध जैसे पदार्थ में भी मिलता है। पानी के काम हैं पचे हुए भोजन को घुलाना और उसको शरीर में जज़्ब होने (सोखे जाने) के लायक़ बनाना, ख़ून को तरल रखना और शरीर के विकारों को बाहर निकालना। शरीर से विकार निकालने वाले जितने भी अंग हैं वे सभी ख़ून से पानी को अलग करते रहते हैं। गुर्दे, फेफड़े, खाल और आंतों के रास्ते हर रोज़ शरीर से लगभग डेढ़-दो सेर पानी निकल जाता है। भोजन से लगभग डेढ पाव पानी शरीर को मिल जाता है, बाक़ी कमी पानी पीकर ही पूरी की जा सकती है।

खनिज लवण—

भोजन के पदार्थों में, ख़ास कर साग-भाजी और फलों में बहुत तरह के प्राकृतिक लवण (नमक) पाये जाते हैं। ये पाचन-क्रिया को

ठीक रखते, हड्डियों के बनने में सहायता देते और ख़ून को ठीक अवस्था में रखते हैं। तनदुरुस्ती बनाये रखने के लिए इन प्राकृतिक औषधियो को भोजन के सहारे शरीर में ज़रूर पहुँचाना चाहिए। चूना और लोहा के अंश खनिज लवण के दो उदाहरण हैं। दूध से चूने का अश मिलता है, जो हड्डियो के बनने और मजबूत रहने में सहायक होता है। लोहे का अंश कई ताज़े और सूखे फलो से मिलता है और खून को उसकी शक्ति देता है।

विटामीन—

'विटामीन' एक अगरेजी शब्द है, पर हिन्दुस्तानी भाषाओं में भी बहुत प्रचलित है। हिन्दी में इसे 'खाद्योज' कहते हैं, जिस से अभिप्राय है खाद्य पदार्थ का 'ओज' या शक्ति। कई प्रयोगो से मालूम हुआ कि शरीर को अच्छी और स्वस्थ अवस्था मे बनाये रखने के लिए श्वेतसार, प्रोटीन, चिकनई, पानी और खनिज लवण के अलावा और कुछ पदार्थों की आवश्यकता है, और ये पदार्थ प्रायः सभी प्राकृतिक फल, साग-भाजी और दूध में पाये जाते हैं। ये पदार्थ आवश्यक हैं और अनायास ही ताज़े फलो, साग, दूध और अनाज में भो पाये जाते हैं, पर इनमें से बहुत से आग की गर्मी और खाने की चीज के बहुत दिनों तक रखे रहने से नष्ट हो जाते है। अब तक पाँच तरह की विटामीन का पता लगा है, पर अब भी विषय की खोज जारी है। ये विटामीन इस तरह हैं :—

विटामिन 'ए'—यह चिकनई में घुलने वाली विटामीन है। यह कुछ ख़ास तरह की चिकनई (जैसे काड नामक मछली के जिगर का तेल, मक्खन), अडे की जर्दी (पीला पदार्थ) और पत्ती वाली हरी भाजियों मे पाई जाती है। यह **विटामीन**

साधारणतः तनदुरुस्ती को बनाये रखने और शरीर को बीमारी से बचने के योग्य बनाने में सहायक होती है। भोजन में इसके रहने से पाचन-शक्ति ठीक रहती है, भूख लगती है और आयु बढ़ती है। आँख, गला और साँस लेने के अवयवो को ठीक हालत में रखने के लिए यह विटामीन आवश्यक है।

विटामीन 'बी'—यह पानी में घुलने वाली विटामीन है और पौदों के बीजो, अडे की जर्दी, बहुत तरह के फल और भाजी, पूरे गेहूँ, बे-छटे चावल और ताजी सेम और मटर में पाई जाती है। गेहूँ जैसे अनाजो में यह ऊपरी छिलके के ठीक नीचे रहती है। अगर गेहूँ को मिल में पीस कर आटा बनाया जाय और चोकर निकाल लिया जाय तो यह विटामीन भी निकल जाती है। विटामीन 'बी' स्नायु-संस्थान को ठीक हालत में रखती है। स्नायु से सबंध रखने वाली बहुत सी बीमारियो से, जिनमें 'बेरी-बेरी' एक है, यह विटामीन बचाती है। विटामीन 'ए' की तरह विटामीन 'बी' भी पाचन-क्रिया को दुरुस्त रखती, भूख बढ़ाती और शरीर की बाढ में सहायक होती है। खाल की कुछ बीमारियो से भी विटामीन 'बी' शरीर को सुरक्षित रखती है।

विटामीन 'सी'—यह पानी मे घुलने वाली विटामीन है और बहुत से रसदार फलो और भाजियो मे पाई जाती है। सतरा, नारंगी, नीबू में यह खास तौर से रहती है। यह दाँतों के बनने और दाँत और हड्डियों को ठीक हालत में रखने में सहायक होती है। रक्त-पित्त और चमड़े और खून की बीमारियो से यह बचाती है।

विटामीन 'डी'—यह चिकनई में घुलने वाली विटामीन

है। काड मछली के जिगर के तेल, दूध, मक्खन, घी, अंडे की चर्बी मे यह विटामीन पाई जाती है। यह सूखा रोग से बचाव करती है और हड्डियों की पूरी उन्नति में सहायक होती है।

विटामीन 'ई'—यह भी चिकनई में घुलने वाली विटामीन है और गेहूँ जैसे अनाज के अकुर (कल्ले) और हरी भाजियों में पाई जाती है। सन्तान पैदा करने वाले अंगों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है और भोजन में इस विटामीन के नहीं रहने से संतान उत्पन्न करने की शक्ति कमजोर होती है या जाती रहती है।

इन दिनो खाद्य-पदार्थों के सबंध में ऐसा समझा जाता है कि उनमें इन विटामीनो का होना जरूरी है। अगर भोजन में विटामीन का अभाव हो तो तनदुरुस्ती में गड़बड़ी होती है और कई तरह के रोग होते हैं।

अच्छे भोजन की पहचान—

अच्छा भोजन वही है, जिसमे ऊपर बताये पदार्थों मे से सभी पदार्थ मौजूद हों। गर्मी और फुर्ती के लिए श्वेतसार और चिकनई हो, छीजन को पूरा करने और पेशियो को ठीक हालत में रखने के लिए प्रोटीन हो, भोजन को घुला कर तन्तुओ तक पहुँचाने और शरीर के विकारो को बाहर निकालने के लिए काफी मात्रा मे पानी हो और साधारणतः तनदुरुस्ती को ठीक रखने और बीमारियों से बचाव के लिए खनिज लवण और विटामीन हों।

कहा जाता है कि मामूली तौर पर काम करने वाले आदमी के लिए दिन भर में लगभग २ छटॉक प्रोटीन, ९ छटाँक श्वेतसार, १½ छटाँक चिकनई और १ छटाँक से कुछ कम खनिज लवण की जरूरत है। जो आदमी कठिन परिश्रम करता है उसके

लिए अधिक प्रोटीन पेशियों को ठीक हालत में रखने के लिए और चिकनई शरीर में गर्मी और फुर्ती लाने के लिए चाहिए। सच तो यह है कि भोजन की मात्रा का सब के लिए ऊँचा-बँधा परिणाम नहीं तय किया जा सकता। आदमियों के काम-काज, उम्र, शरीर का वजन और तनदुरुस्ती की हालत पर यह परिमाण निर्भर है। हिन्दुस्तानी भोजन मे, जिसमें रोटी, दाल, चावल, घी, दूध दही और भाजी का समावेश रहता है, शरीर के लिए सभी ज़रूरी पदार्थ आसानी से मिल जाते हैं; पर खेद है कि किसान और मज़दूरो को या और शारीरिक मेहनत करने वाले श्रम-जीवियो को घी-दूध या तो बिलकुल नही मिलता या काफी मात्रा मे नही मिलता। दूध ही एक ऐसा खाद्य-पदार्थ है कि उसमें शरीर के पोषण और उसके बल को बनाये रखने के लिए सभी चीज़ें मौजूद हैं पर इन दिनो हिन्दुस्तान मे अच्छे दूध का मिलना एक समस्या ही है।

भोजन के सम्बन्ध में सभी बातें इस पुस्तक में बताई नहीं जा सकतीं। रोगी का कुछ भोजन है और स्वस्थ आदमियों का कुछ, किसी अवस्था में मांसवर्द्धक पदार्थ का अधिक व्यवहार ज़रूरी है और किसी अवस्था में वह बिल्कुल त्याज्य है। अपच रोग वालों को या किसी भी जीर्ण रोग के रोगी को श्वेतसार और मासवर्द्धक पदार्थ एक साथ न खाना चाहिए। फिर सभी के हर रोज़ के भोजन मे बे-पकी सब्ज़ी-भाज़ी, जैसे टमाटर, मूली, प्याज़, गाजर इत्यादि और मौसम के ताज़े फलों को काफी स्थान मिलना चाहिए। भोजन-सम्बन्धी सभी सिद्धान्तों को जानने के लिए विद्यार्थियो को और और पुस्तके* पढ़नी चाहिए।

---

* लेखक की 'रोगों की अचूक चिकित्सा', लीडर प्रेस इलाहाबाद।

डाक्टर बालेश्वरप्रसाद सिंह की 'क्या और कैसे खायें', लूकरगंज, इलाहाबाद।

भोजन का पचना

भोजन पचने के सम्बन्ध में और बातें लिखने से पहले यह कह देना जरूरी है कि यह विषय पोषण-सस्थान का है। साथ ही यह भी जानना चाहिए कि (१) शरीर का पोषण और (२) शरीर से विकारो का बाहर निकल जाना दो क्रियाएँ तो हैं पर सच्ची बात है कि वे दोनो एक दूसरे-से बहुत सम्बन्ध रखती हैं। शरीर का पोषण बहुत अंशों में उचित खान-पान से होता है। जब खाया हुआ भोजन और पिये गये तरल पदार्थ, जैसे दूध, मठा, फल और भाजी के रस पानी इत्यादि अच्छी तरह पच जाते हैं तभी उनसे शरीर के पोषण के लिए विकार-रहित रस और रक्त बनते हैं। भोजन का जो हिस्सा शरीर में लग जाता है वह तो उसके काम आ जाता है, पर जो हिस्सा शरीर में नहीं लगता वह विकार है। वह शरीर के काम का नहीं है। उसे पाखाना-पेशाब के रूप में शरीर के बाहर निकल जाना चाहिए। अगर वह पूरा पूरा नहीं निकलता तो शरीर के अन्दर सड़न पैदा होती है, जिससे सभी तरह की बीमारियाँ होती हैं। भोजन का अच्छी तरह पचना, शरीर में लगना और उसके बचे हुए अश का शरीर के बाहर निकल जाना भोजन के अच्छा होने और शरीर के तनदुरुस्त रहने पर निर्भर है।

यह भी समझना चाहिए कि खाना, खाये हुए भोजन का पचना, पचे भोजन का रस निकाला जाना और बचे हुए अंश का बाहर फेंक दिया जाना बहुत कुछ एक ही अवयव (अग) का काम है। जिसे हम **भोजन की नली (भोजन की प्रणाली, अन्न मार्ग,** alimentary canal) कहते हैं वह मुँह से शुरू होकर पाखाने के रास्ते, तक जाती है। उसका आरम्भ मुँह है और अन्त पाखाने का

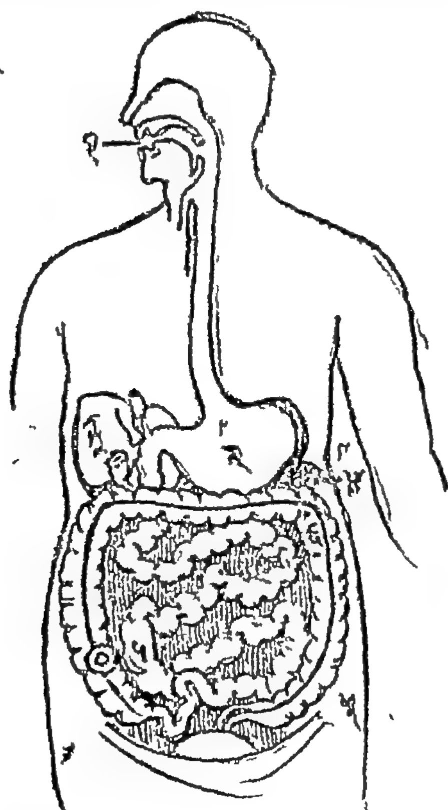
रास्ता दोनो के बीच में बहुत से अग और कल-पुर्जे हैं, जिनका वर्णन आगे आयेगा और जिनमें भोजन का पाचन और विकारो के निकाले जाने की क्रिया पूरी होती है। ऐसा नही है कि भोजन पचाने का अग कोई और है और विकार निकालने का अंग और—दोनो एक ही बड़े अंग के हिस्से हैं। फिर भोजन का पाचन सिर्फ **पेट की थैली, आमाशय,** मे न होकर मुँह से शुरू हो जाता है और छोटी आँतो तक जारी रहता है।

इस पाठ में सिर्फ भोजन की पाचन-क्रिया बताई जायगी। विकार निकलने की क्रिया का वर्णन आगे आयेगा।

पाचन और भोजन की नली—

पाचन उस क्रिया को कहते हैं, जिससे खाया हुआ भोजन बहुत छोटे छोटे टुकडों मे किये जाने और चबा-चबा कर अच्छी तरह पिसे जाने पर और फिर कई और क्रियाओ के बाद इस योग्य हो जाता है कि उसका सार-तत्व खिच कर बहुत कुछ खून के दौरान (रक्त-सचार) में पहुँच जाता है। इस पाचन का बहुत कुछ प्रबन्ध एक लम्बी नली द्वारा होता है, जिसे **भोजन की नली, भोजन-प्रणाली, अन्न मार्ग** (alimentary canal) कहते हैं। यह नली कहीं पर सकरी और कहीं बहुत फैली हुई है। यह मुँह में शुरू होकर गले के पास **ग्रसनिका** (pharynx) नाम की कुछ चौड़ी जगह में पहुँचती है, जहाँ नाक के भीतरी छेद, कान की छोटी नलियाँ और हवा की नली का ऊपरी सिरा भी रहता है। ग्रसनिका के बाद ही भोजन की नली सकरी होकर एक मुलायम पेशियो की नली रह जाती है। पहला हिस्सा १० इंच लम्बा होता है। इस १०" इच लम्बान के बाद भोजन की नली हवा की नली के ठीक पीछे होती हुई गले के नीचे उतर कर छाती के हिस्से में चली जाती है। फिर उदर और छाती

के बीच वाली पेशी (diaphragm) से निकल कर यह नीचे उतरती है और तब आमाशय (पेट) की थैली के रूप मे फैल जाती है। यह थैली बडी और जरा बाईं ओर पडी है। आमाशय के दो दरवाजे हैं, एक तो ऊपर वाला, जहाँ भोजन की नली फैल गई है और दूसरा नीचे का, जहाँ वह हिस्सा, जिसे आँत कहते हैं, शुरू



भोजन की नली, मुँह से लेकर बड़ी आँत के अंत तक।
१—मुँह; २—पेट की थैली, ३—जिगर; ४—पैनक्रियस (क्लोम);
५—छोटी आँत, ६—बड़ी आँत। चित्र नं० ३०

क्रिया के साथ ही लार की गिल्टियो से लार भी निकल कर भोजन में मिलती है। अब खाई हुई चीज गले से नीचे उतरने के लायक हो जाती है। इस समय भी जीभ सहारा देती है। वह भोजन को तालू के दरवाजे पर ढकेल देती है और भोजन टेटुआ (भोजन की नली का शुरू का हिस्सा) में पहुँच जाता है। भोजन की नली के बार-बार सिकुड़ने मे भोजन नीचे की ओर बढ़ता और आमाशय की थैली में पहुँचता है। आमाशय की पेशियो के सिकुड़ने और फैलने से भोजन बार-बार इधर से उधर चलाया और घुमाया जाता है। यहाँ उसमे कुछ पचाने वाले रस भी आ मिलते हैं। बार-बार चलाये और घुमाये जाने से और रसों की क्रिया से भोजन का बहुत सा अश पच जाता है और वह इस योग्य होता है कि धीरे धीरे छोटी आँत के पक्वाशय (duodenum) नाम के हिस्से में चला जाय। जब भोजन पक्वाशय में आता है तो यहाँ उस में क्लोम और जिगर (यकृत) से रस आकर मिलते हैं और उसका जो अश आमाशय में नहीं पचता है वह पक्वाशय में इन रसों की क्रिया से पचता है। अब भोजन इस योग्य हो जाता है कि उसका तत्व (रस) शरीर में खिच जाय। ज्यों ज्यो वह छोटी आँत मे आगे बढ़ता जाता है यह रस खिचने लगता है और उससे ख़ून बनने की क्रिया जारी रहती है। छोटी आँत से जुटी हुई ख़ून की पतली नालियों से होकर ख़ून शरीर के बहुत हिस्सों में चला जाता है। अब भोजन मे शरीर के लायक़ कोई पदार्थ नहीं रह जाता। उसका बचा-बचाया भाग मल के रूप में बडी आँत मे चला जाता है। बड़ी आँत में एक ख़ास काम होता है। जो बचा हुआ पानी का अंश इस मल के साथ रहता है वह बड़ी आँत में सोख लिया जाता है और मल मलद्वार से होकर बाहर निकल जाता है।

भोजन पचाने वाले अंग

ऊपर संक्षेप में पाचन-क्रिया बताई गई। इसका पूरा हाल तभी मालूम हो सकता है, जब हम उन अंगों और यन्त्रों को अच्छी तरह जान लें, जिनमें पाचन-क्रिया होती है। ऊपर बताया जा चुका है कि भोजन-क्रिया मुँह से शुरू होकर आँतों तक जारी रहती है। इसलिए मुँह से लेकर आँत तक के अलग-अलग अंगों और यन्त्रों का हाल जानना ज़रूरी है।

मुँह

भोजन की नली मुँह से ही शुरू होती है। मुँह उस नली का ऊपरी खुला हुआ भाग है। मुँह के अन्दर अगल-बगल में **गाल** हैं, ऊपर **तालू** है और नीचे **जीभ** है। जब मुँह बन्द रहता है तो ऊपर और नीचे के **दाँत** बीच में आकर मिलते हैं। मुँह के पीछे **गला** है और गले के दोनों ओर **टान्सिल** (tonsil, कौड़ी) नाम की गिल्टियाँ हैं, जो तन्तु के उभरे हिस्से हैं।

दाँत—

दाँतों का काम है भोजन को अच्छी तरह चबाना, जिससे वह इस योग हो जाय कि पचाने वाले रस उस पर अपना काम अच्छी तरह कर सकें और भोजन ठीक ठीक पच जाय।

आदमी के जीवन में दाँत दो बार उगते हैं। सबसे पहले **दूध के दाँत** निकलते हैं। फिर कुछ साल के बाद उनकी जगह **असली दाँत (अन्न के दाँत)** निकलते हैं। दूध के दाँत २० ही

लगते हैं और असली होने लगते हैं। दूध के दाँत छः महीने से ढाई वर्ष तक निकलते आते हैं। ये असली दाँतों के बनिस्बत कुछ छोटे और कमजोर होते हैं। छठे वर्ष के लगभग में ठीक बीचों-बीच के दूध के दाँत गिरते हैं और बारह वर्ष की उम्र तक सभी दूध के दाँत गिर जाते हैं। छठे या सातवें वर्ष से ये दाँत एक एक करके गिरने लगते हैं और १२ वर्ष की उम्र लगते लगते ये सब गिर जाते हैं। बात यह है कि जैसे जैसे असली दाँत उगते हैं वे दूध के दाँतों को नीचे से ढकेल कर बाहर गिरा देते हैं।

दूध के दाँत २० होते हैं और असली दाँत ३२, पर सभी असली दाँत जल्दी ही नहीं उगते। बारह वर्ष की उम्र तक २८ दाँत निकल आते हैं, बाकी ४ दाँत (अक्ल दाढ़) बाद की उम्र में निकलते हैं।

ये सब दाँत एक तरह के नहीं होते। इनके काम अलग अलग होते हैं और काम के अनुसार इनके आकार और नाम हैं। पहले कह आए हैं कि ऊपर-नीचे के जबड़ों में दाँतों की दो कतारें होती हैं। ऊपर के जबड़े में १६ और नीचे के जबड़े में भी १६ दाँत होते हैं। सामने के चपटे दाँत काटने वाले दाँत (कर्तन दाँत, incisors or cutter teeth) हैं। ये ऊपर ४ और नीचे ४, कुल ८ हैं। फिर इनके बाद दोनों जबड़ों में दोनों ओर एक एक लंबा और नुकीला दाँत है, जो फाड़ने वाला दाँत (भेदक दाँत, कीला, canine) कहलाता है। ये कीलें ४ हैं। कुत्ते, बिल्ली, चीते आदि मांस खाने वाले जानवरों में कीले बहुत लंबे और नुकीले होते हैं। इनकी दोनों तरफ दो-दो चबाने वाले दाँत (chewers, bicuspids) हैं। ऊपर और

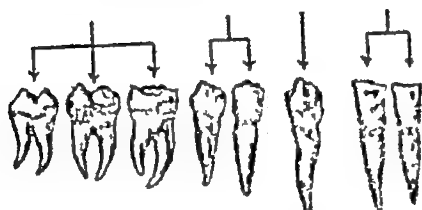
नीचे के जबड़ों में ये ८ हैं। सब से अंत में दोनों तरफ तीन-तीन **चबाने वाले दाँत** (molars, grinders, दाढ) हैं। इन्हीं में से सबसे अख़ीर का दाँत **अक़्ल की दाढ़** कहलाता है। इस तरह ऊपर नीचे कुल मिलाकर (काटने वाले ८+फाड़ने वाले ४+ कुचलने वाले ८+चबाने वाले १२) ३२ दाँत हैं।

ये दाँत इसीलिए हैं कि खाई हुई चीज काटने, फाडने, कुचलने और चबाने के बाद इस तरह बन जाय कि उसके पचने में आसानी हो। ये अच्छी हालत में तभी रहते हैं जब कि इनसे ख़ूब काम लिया जाता है। हलवा, खीर जैसी मुलायम चीजों के बहुत खाने से इनकी कसरत नहीं होती और ये कमजोर पड़ जाते हैं। बहुत ठडी या गर्म चीजों के खाने से भी दाँतो में कमज़ोरी आ जाती है। सफ़ाई भी जरूरी है, पर बाज़ारू मंजन और दवाइयों से अक्सर दाँत ख़राब और कमज़ोर हो जाते हैं। नीम, बबूल (कीकर) की दातुन दाँतों की सफाई के लिए अच्छी होती हैं। दाँतों के ख़राब हो जाने से पाचन-क्रिया ठीक-ठीक नहीं हो पाती और पाचन की गडबड़ी से तनदुरुस्ती बिगड़ जाती है। इसलिए फल और कच्चे चने जैसी चीज़ों को खा खाकर दाँतो और तनदुरुस्ती को ठीक रखना चाहिए।

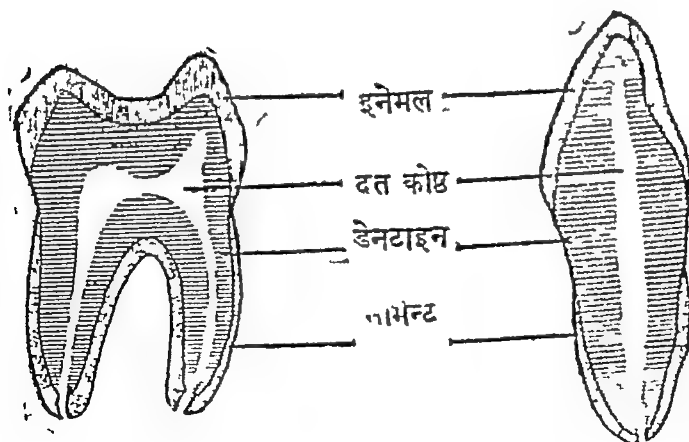
दाँतों की बनावट—

दाँत जबड़े में जडे हैं। जो हिस्सा जबडे के अन्दर रहता है वह जड़ (fang) कहलाता है। जड के ऊपर सीमेंट की तरह एक पदार्थ रहता है, जिसके सहारे दाँत जबड़े के अन्दर चिमटा रहता है। मसूढ़े के आगे जो बाहरी हिस्सा है वह **चोटी** (crown) है। काटने वाले और फाड़ने वाले दाँतों के एक ही जड़ होती है, कुचलने वालों के दो और चबाने वालो के तीन।

दाँतो का बाहरी सफ़ेद हिस्सा हड्डी की तरह के एक पदार्थ का होता है, जिसे इनामेल (enamel दंतवेष्ट, कचक) कहते हैं। इनामेल के नीचे की चीज़ को रदिन (dentine) कहते हैं। इसका रंग भी सफ़ेद या पीलापन लिये होता है।



एक तरफ़ के आधे जबड़े में ८ दाँत। चित्र नं० ३२



दाँत के हिस्से। चित्र नं० ३३

दाँत अन्दर से खोखला होता है। उस खोखले को **दंत-कोष्ठ** (central cavity, pulp cavity) कहते हैं। खोखले में **गूदा** (**दंत-मज्जा**, tooth pulp) होता है, जिसमें पतली-पतली बारीक खून की नलियाँ, बहुत पतले स्नायु-जाल, सौत्रिक तन्तु और कई तरह के सेल होते हैं। हर दाँत की जड़ में एक छोटा छेद होता है। इसी छेद से ख़ून की नलियाँ और स्नायु-जाल खोखले में आते हैं।

ओठ (होंठ) और श्लेष्म की झिल्ली—

भोजन के मुँह में जाने और उसके पचने योग्य बनने में ओठ भी अपना काम करते हैं। वह एक तरह से मुँह का दरवाज़ा है। ओठों (ऊपर और नीचे के ओठ) में बहुत से स्नायु जाल हैं, जिनसे ओठ को अनुभव करने और कुछ ख़ास तरह के काम करने की शक्ति है। जो चीज़ खाने लायक़ नहीं है उसको ओठ या तो मुँह के अन्दर जाने नहीं देते या तुरन्त निकाल कर बाहर फेंक देते हैं। छोटे छोटे बच्चों में ओठ की यह करामात अक्सर देखी जाती है।

दोनों ओठ एक तरह के बहुत पतले चमड़े से ढके होते हैं। मुँह के अन्दर इस चमड़े की जगह एक झिल्ली रहती है, जिसे **श्लेष्म की झिल्ली** (**श्लैष्मिक कला**, mucous membrane) कहते हैं। श्लेष्म एक तरह का चिकना और लस्सीदार पदार्थ है, जो कफ़ के रूप में भी प्रकट होता है। ज़ुकाम और खाँसी की बीमारियों में श्लेष्म से तकलीफ तो होती है पर है यह बड़े काम की चीज़। यह बीमारी के बहुत छोटे कीड़ों को हमारे शरीर में घुसने नहीं देता। श्लेष्म के मुँह में रहने से ही मुँह का भीतरी हिस्सा नहीं चिपकता। खाई हुई चीज़ के साथ श्लेष्म मिल जाता

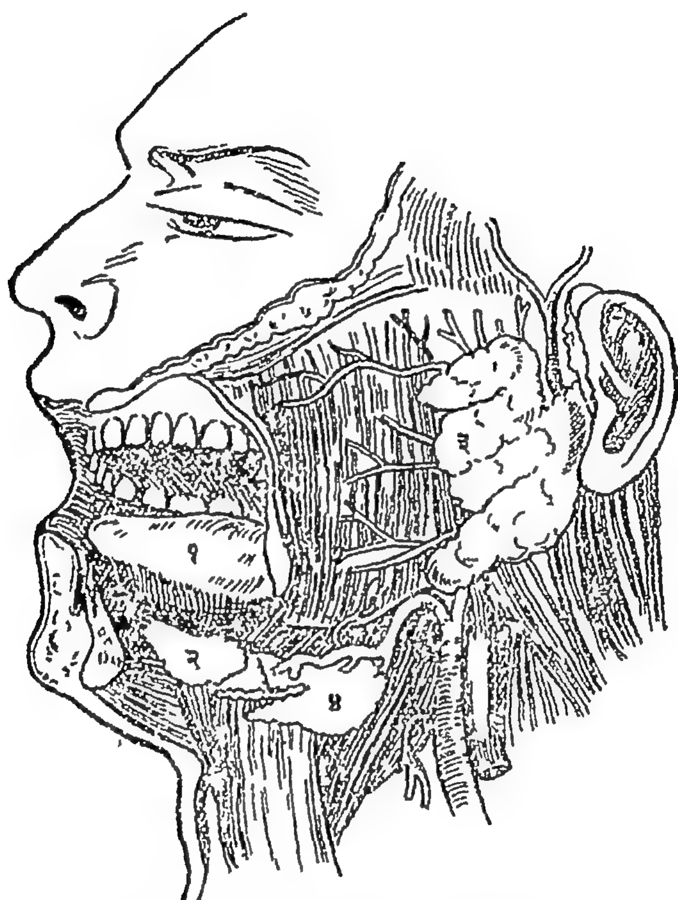
है, जिससे भोजन आसानी से फिसलता हुआ आमाशय तक पहुँच जाता है। श्लेष्म की झिल्ली से श्लेष्म का निकलना स्नायु-सम्थान के अन्तर्गत खास स्नायुओं का काम है। अक्सर देखा जाता है कि डर या घबडाहट से मुँह सूख जाता है। उस समय स्नायुओं के काम की गड़बड़ी से मुँह मे श्लेष्म नहीं निकलता।

लार (लाला या राल) का पाचन पर असर—

खाते समय मुँह में एक और तरह का पानी जैसा पदार्थ बनता और निकलता है। वह **लार** है। यह बात सभी को मालूम है कि अच्छे भोजन को देखते ही, कभी कभी तो उसकी याद से ही, मुँह मे पानी भर जाता है। यह पानी वही लार है। भोजन के समय खाई हुई चीज दाँतो से कुचली और चबाई जाती है और साथ ही लार के साथ भी अच्छी तरह मिलाई जाती है और तब उस पर श्लेष्म लगता है।

लार मुँह के अन्दर की कुछ खास खास गिल्टियों से निकलती हैं। उनको **लार की गिल्टियाँ (लाला-ग्रंथियाँ,** salivary glands) कहते हैं। यह गिल्टियाँ छः हैं, ३ इधर और ३ उधर। एक **कान की जड़ वाली** गिल्टी (**कर्णमूल ग्रंथि** parotid gland) कान के सामने (मुँह के भीतरी भाग में) है। दो और **जबड़े के नीचे की गिल्टी (हन्वधर ग्रंथि,** submaxillary gland) **और जीभ के नीचे की गिल्टी (जिह्वाधर ग्रंथि,** sublingual gland) हैं। ये एक तरफ की ३ गिल्टियाँ हुईं। इसी तरह ३ दूसरी तरफ भी हैं। इन गिल्टियो से जो लार निकलती है वह बहुत छोटी नलियो के रास्ते से मुँह में आती है।

जब भोजन लार से मिलता है तो वह सिर्फ मुलायम ही नहीं हो जाता बल्कि पचने योग्य हो जाता है। भोजन में जो श्वेतसार



१—जीभ, २—जीभ के नीचे वाली गिल्टी,
३—कान के सामने वाली गिल्टी,
४—जबड़े के नीचे वाली गिल्टी। चित्र न० ३४

पदार्थ रहता है वह लार के असर से शकर बन जाता है और तब उसके पचने में आसानी होती है। लार खारापन का गुण रखती

है। उसके अन्दर **टायलिन** (ptyalin) नाम का एक खमीर है, जो श्वेतसार को शक्कर में बदल देता है। रोटी, चावल, आलू, केला इत्यादि श्वेतसार पदार्थ के नमूने हैं। ये बिना लार से अच्छी तरह मिले ठीक ठीक पच नहीं सकते।

लार तभी बनती और निकलती है, जब भोजन अच्छी तरह चबाया जाता है और चबाने के समय में ही भोजन लार से मिलता है। फिर अच्छी तरह चबाये और लार से मिले भोजन पर श्लेष्म लग जाता है और तभी वह निगला जा सकता है। इस संबंध में एक समझने की बात यह है कि पेट में लार नहीं बनती। वह तो मुँह में ही बनती है और इसी लिए मुंह में भोजन का अच्छी तरह चबाया जाना जरूरी है।

श्वेतसार पदार्थ के अलावा और जो पदार्थ खाये जाते हैं, जैसे माँसवर्द्धक पदार्थ और चिकनई देने वाले पदार्थ, उन पर लार का कोई रासायनिक प्रभाव नहीं पड़ता। लार के साथ मिलने से वे मुलायम तो हो जाते हैं, पर उन में श्वेतसार से शक्कर बनाने वाली क्रिया जैसी कोई क्रिया नहीं होती। खाने की कुछ ऐसी चीजें भी हैं, जैसे चना या दूसरी दालें, जिन में मांसवर्द्धक पदार्थ के अलावा बहुत थोड़े अंश में श्वेतसार भी रहता है। ऐसी चीजों में श्वेतसार का जितना अंश है उतने पर लार का असर पड़ता है, बाक़ी पर नहीं। श्वेतसार के अलावा और पदार्थों का पाचन आमाशय और आँत के रसों से होता है, जिस के संबंध में आगे बताया जायगा।

जीभ

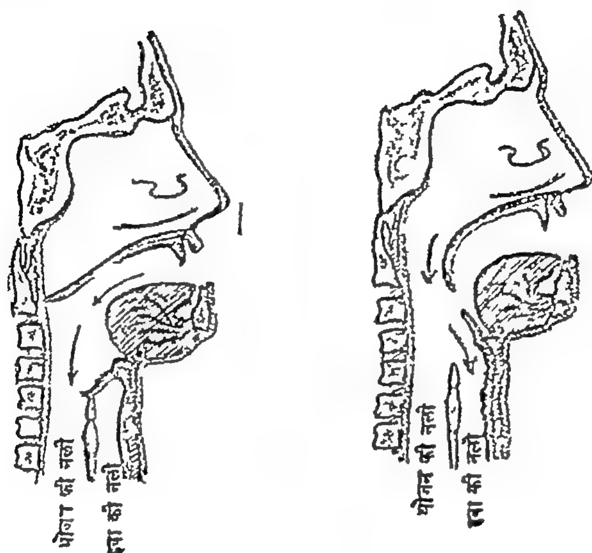
भोजन को पचाने योग्य बनाने के लिए जीभ कुछ कम जरूरी अंग नहीं है। जीभ का पूरा-पूरा वर्णन आगे आयेगा, पर यहाँ इतना बता देना आवश्यक है कि भोजन के चबाये जाने में जीभ

बहुत सहायता देती है। दाँतों के नीचे ठीक-ठीक दबाये और चबाये जाने के लिए खाई हुई चीज को जीभ ही घुमाती है। फिर उसके चबाये जाने के बाद निगलते समय भी जीभ का सहारा लिया जाता है।

भोजन हवा की नली में क्यों नहीं जाता ?

यहाँ पर एक जरूरी बात समझना चाहिए। जीभ की जड के नीचे हवा की नली (स्वरयंत्र) और भोजन की नली दोनो ही हैं। जीभ की जड़ के ठीक पीछे नीचे की तरफ हवा की नली का ऊपरी हिस्सा है और ठीक इसके पीछे भोजन की नली का ऊपरी भाग है। खाई हुई चीज को भोजन की नली में पहुँचने के लिए हवा की नली के ऊपर होकर जाना पड़ता है। यह पूछा जा सकता है कि खाई हुई चीज हवा की नली में क्यों नहीं गिर जाती। उत्तर यह है कि हवा की नली के ऊपर एक ढकना रहता है, जिसे **हवा की नली का ढक्कन (स्वरयन्त्रच्छद,** epiglottis) कहते हैं। साँस लेते समय यह ढक्कन हवा की नली पर नहीं रहता, जिससे हवा नाक में से होकर बिना रुकावट के हवा की नली मे पहुँचती है। लेकिन खाते समय जैसे ही भोजन नीचे को खिसकता है यह ढक्कन हवा की नली के ऊपर आ जाता है, जिससे भोजन को भोजन की नली बिना रुकावट के नीचे उतरने के लिए मिल जाती है। इतना ही नहीं। पेशियों के सिकुडने से सारी हवा की नली कुछ आगे को जीभ की जड़ के नीचे सरक जाती है। इस तरह हवा की नली के ऊपर ढक्कन के आ जाने और हवा की नली के आगे की ओर सरकने से भोजन हवा की नली में नहीं गिर पाता। कभी-कभी भूल हो जाती है, जब कि भोजन का कुछ अश या पानी के कुछ क़तरे लापरवाही या जल्दबाजी के कारण हवा की नली मे गिर जाते हैं। ऐसी अवस्था में भोंके को खाँसी आती है और

उस हिस्से मे गिरा हुआ भोजन या पानी का अश वाहर फेंक दिया जाता है।



हवा की नली का ढक्कन, खुला और वन्द
चित्र नं० ३५

आमाशय

अच्छी तरह चवाया हुआ भोजन लार के साथ मिलकर भोजन की नली में उतरता है और धीरे-धीरे 'आमाशय' में पहुॅचता है। साधारण वोल-चाल मे आमाशय को ही 'पेट' कहते हैं। यह शरीर के खोखले अगों में से सव से बड़ा और साथ ही वड़े काम का अग है। यह समझना चाहिए कि आमाशय भोजन की नली से भिन्न नहीं बल्कि उसी का फैलाव है। आमाशय का आकार चमड़े की मशक से वहुत कुछ मिलता है। उसकी लम्बाई १-२१२ इंच और चौड़ाई लगभग ४ इच के होती है। उसमें एक तो ऊपर से भोजन

आने का रास्ता है, जो बायीं ओर दिल (हृदय) के पास है। इस रास्ते को आमाशय का हृदयद्वार कहते हैं। फिर पचे भोजन का नीचे आँतों में उतरने का दूसरा रास्ता भी है। यह आमाशय के निचले भाग मे दाहिनी तरफ है। इसे पक्वाशयिक द्वार कहते हैं।

जब आमाशय खाली होता है तो उसकी दीवारें बिना हवा की फ़ुटबाल की तरह एक दूसरे से मिली रहती हैं। जब उसमे भोजन पहुँचता है तो वह फैलने लगता है। भोजन की जितनी मात्रा होती है उतना ही आमाशय फैलता है, लेकिन साधारणतः आमाशय मे लगभग १½ सेर भोजन के लिए जगह होती है।

आमाशय की दीवार बहुत अच्छे ढग से बनी होती है। इस की तीन तहे होती हैं। पहली तह एक चिकने कोट की सी होती है, जिसके कारण आमाशय आस-पास मे और अगो के होते हुए भी स्वतन्त्रता से गति करता है। बीच की तह पेशियो के सूत्रों (muscular fibres) से बनी होती है। ये सूत्र तीन तहो में भिन्न भिन्न दिशाओ में फैले रहते हैं, जिससे कि भोजन अच्छी तरह इधर से उधर झकझोरा जा सके। सबसे भीतरी तह श्लैष्मिक झिल्ली की रहती है। बीच वाली पेशियो की तह के कारण भोजन आमाशय में पहुँचते ही इधर-उधर घुमाया जाता है, और इसी क्रिया से वह पचता है। भोजन के अन्दर आते ही पेशियाँ अपना काम शुरू कर देती हैं और भोजन को आमाशय के एक कोने से दूसरे कोने मे फेंकती रहती हैं। भोजन चाहे जितना किया जाय, आमाशय की दीवारें उसके पास ही रहती हैं। इसीसे पेशियों की गति से भोजन दब दब कर मुलायम हो जाता है और उसके पचने में आमाशय का रस (gastric juice) भी बहुत सहायता देता है। यह रस सब से भीतरी श्लैष्मिक झिल्ली

वाली तह से निकलता है। इसमें कुछ छोटी छोटी गिल्टियाँ होती हैं। एक तरह की गिल्टियो से श्लेष्म (mucous) निकलता रहता है और दूसरी तरह की गिल्टियो से ऊपर कहा गया आमाशय का रस। इस रस का गुण खट्टापन लिये हुए है। आमाशय के रस में खटाई रहने का कारण यह है कि उनमें नमक का तेज़ाब (अभिद्रवहरिक, hydrochloric acid) रहता है। इस खटाई के अलावा आमाशय के रस मे पेप्सीन (pepsin) और रेनेट (rennet) नामक दो खमीरें होती हैं।

यहाँ पर यह समझना चाहिए कि भोजन जब गले के नीचे उतरता है तो उस पर लार का असर होता रहता है। खारापन का गुण रखने वाली लार श्वेतसार पदार्थ को पचने लायक़ शकर बना देती है। भोजन जब आमाशय में पहुँचता है तब भी कुछ देर तक असर जारी रहता है, पर लगभग आध घंटे में ही आमाशय की भीतरी तह की गिल्टियों से आमाशय का रस निकलने लगता है। इसके खट्टापन के कारण खारापन का गुण रखने वाली लार का असर बंद हो जाता है और साथ ही श्वेतसार पदार्थों का पचना भी रुक जाता है। श्वेतसार पदार्थ का जितना अंश शकर बन गया वह तो पच ही गया, पर जिस अंश की शकर नहीं बनी वह आमाशय से नीचे उतर कर छोटी आँत में पचता है।

जिस तरह लार का असर श्वेतसार पदार्थों पर होता है उसी तरह आमाशय के रस का असर माँसवर्द्धक पदार्थों पर होता है। इस रस में जो रेनेट की खमीर होती है उसके असर से दूध (एक माँसवर्द्धक पदार्थ) जम कर दही के थक्के की तरह बन जाता है, फिर इस थक्के पर आमाशय के रस के अन्दर की दूसरी खमीर पेप्सीन का असर शुरू होता है। पेप्सीन का असर

और और माँसवर्द्धक पदार्थों पर भी होता है। नमक के तेज़ाब के सहारे पेप्सीन माँसवर्द्धक पदार्थों को **पेप्टोन** (peptone) नामक पदार्थ में बदल देती है। पेप्टोन एक घुल जाने वाला पदार्थ है, जिसके कारण वह आसानी से शरीर में ले लिया जाता है।

आमाशय के अन्दर की यह पाचन-क्रिया लगभग ३-४ घटों तक चलती है। अब यह देखना है कि जब भोजन पर आमाशय के रस का पूरा असर पड चुकता है तो आमाशय में कैसे कैसे पदार्थ रहते हैं। वे पदार्थ ये हैं—पचे हुए श्वेतसार से बनी शक्कर, कुछ बिना पचा श्वेतसार, पचे हुए माँसवर्द्धक पदार्थ से बना पेप्टोन, कुछ बिना पचा माँसवर्द्धक पदार्थ, पिघली हुई चिकनई (घी, मक्खन, तेल इत्यादि) और भोजन का ऐसा अश जो बिल्कुल ही नहीं पचता, जैसे फलों और भाजियो के रेशे या आटे के अन्दर का चोकर। ये सभी पदार्थ आमाशय के रस से मिले रहते हैं। इस मिले-घुले पदार्थ को **आहार रस** (chyme, चाइम) कहते हैं। इसमें से शकर और पेप्टोन का कुछ अश आमाशय की श्लैष्मिक झिल्ली में से सीधा खून में पहुँच जाता है, पर आहार रस का बहुत सा अंश आमाशय के **पक्काशयिक द्वार** से पक्वाशय में चला जाता है। यह द्वार (दरवाजा) घेरेदार पेशियों का बना होता है और तब तक बंद रहता है जब तक भोजन आमाशय के रस के साथ अच्छी तरह मिलकर नीचे उतरने के लायक़ नहीं हो जाता। जब भोजन इस दरवाज़े से पक्वाशय मे पहुँच जाता है तो उस पर क्लोम, (pancreas) जिगर (यकृत) और छोटी आँत की दीवार के रसो का असर शुरू हो जाता है।

श्वेतसार का बहुत सा अश मुँह से ही शकर बन कर आमाशय में आता है और जब तक आमाशय के रस का असर शुरू नहीं

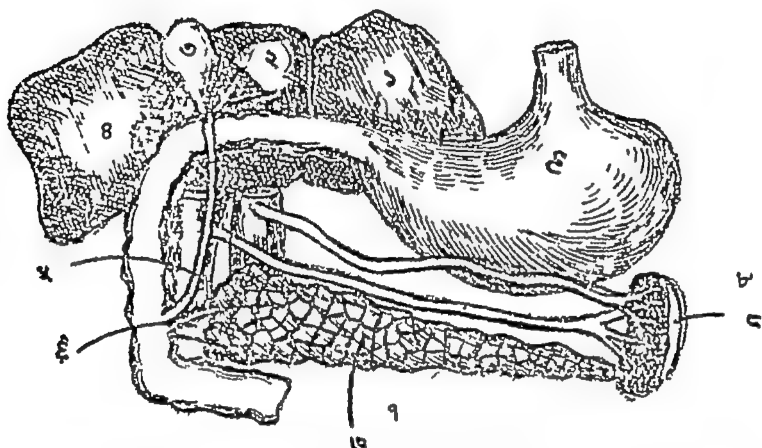
होता तब तक आमाशय मे भी वह क्रिया जारी रहती है। इस तरह श्वेतसार का बहुत हिस्सा मुँह और आमाशय में पच जाता है। मांसवर्द्धक पदार्थ भी आमाशय में बहुत कुछ पच जाते हैं, पर चिकनई (घी, तेल या दूध की चिकनई) आमाशय मे बिल्कुल नही पचती। जो कुछ आमाशय में नही पच पाता वह आँतों में पहुँच कर बिल्कुल पच जाता है।

छोटी आँत—

यह हमने देख लिया कि आमाशय से आहार रस पक्वाशयिक द्वार से निकल कर पक्वाशय मे पहुँचता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, पक्वाशय (duodenum) छोटी आँत का पहला हिस्सा है, जो १० इंच लम्बा है और जिसकी शक्ल आधे चाँद की सी है। जब आहार रस पक्वाशय में पहुँचता है तो यहाँ क्लोम और जिगर नामक गिल्टियो के रस आहार रस से मिलते हैं और उसके अच्छी तरह पच जाने में सहायक होते हैं।

छोटी आँत का पक्वाशय नामक हिस्सा तो जरूरी है ही, पर उसका आगे का यानी पक्वाशय के बाद का हिस्सा कम जरूरी नही है। छोटी आँत की दीवारो की बनावट भी आमाशय की दीवारो की बनावट की तरह है। उसमें भी आमाशय की दीवारो की तरह ३ तहें हैं। बीच की तह पेशियो के सूत्र की ही बनी होती है, पर ये सूत्र आमाशय की बीच वाली तह की तरह भिन्न भिन्न दिशाओ में न फैलकर आँत के चारों ओर वृत्ताकार में लिपटे होते हैं। पेशियो की बनावट में इस भेद का कारण यह है कि आँत में आहार रस को आमाशय की तरह आगे-पीछे झकझोरे जाने की जरूरत नहीं रहती। आँत तो उस रस को धीरे धीरे आगे बढ़ाती है।

आँत की भीतरी श्लैष्मिक तह में जो गिल्टियाँ होती हैं उनसे पचाने वाले रस निकलते हैं। ये रस बड़े काम के हैं, और इन के सहारे आहार रस के सभी अंश अच्छी तरह पचते हैं। आँत



१—४—जिगर, ३—जिगर में पित्त की थैली, ५—पित्त की नली; ६—क्लोम रस की नली, ७—क्लोम, ८—प्लीहा। चित्र न०, ३६

के रसों की क्रिया को समझने के लिए पहले क्लोम और जिगर (यकृत) नामक गिल्टियों को जानना और समझना चाहिए।

क्लोम—

आमाशय से ज़रा पीछे हट कर या उसी के नीचे और उदर की पिछली दीवार से लगी हुई क्लोम (pancreas) नाम की एक बड़ी गिल्टी है। इसका दाहिना सिरा मोटा और बायाँ, जिसे क्लोम की पूँछ कहते हैं, पतला होता है। इसकी शक्ल पिस्तौल की सी होती है। क्लोम का दाहिना सिरा पक्वाशय के घेरे में रहता है और बायाँ सिरा प्लीहा से (जिसका वर्णन आयेगा) मिला रहता है।

इस गिल्टी से जो पचाने वाला रस निकलता है उसे क्लोम रस (parcreatic juice) कहते हैं। यह रस एक इंच की नली से होकर पक्वाशय में पहुँचता है। एक विशेषता यह है कि क्लोम रस की नली जिगर से आई हुई पित्त की नली के साथ साथ पक्वाशय मे प्रवेश करती है। दोनों नलियाँ एक ही साथ और एक ही जगह पक्वाशय की दीवार में घुसती है और दोनो के रस एक ही रास्ते से पक्वाशय के अन्दर पहुँच कर आहार रस पर अपना असर डालते हैं।

क्लोम रस पतला, साफ़ और खारापन का गुण लिए हुए होता है। इसमें ३ तरह (किसी किसी का कहना है कि ४ तरह) की खमीरें पाई जाती हैं। एक खमीर (अमाइलोप्सिन, amylopsin) का असर लार के असर की तरह है। श्वेतसार का जो भाग लार के असर से बचा रहता है वह इस खमीर के असर से शकर में बदल जाता है। इसी तरह दूसरी खमीर (ट्रिप्सिन, trypsin) आमाशय के रस के असर से बचे हुए मांसवर्द्धक पदार्थ को पेप्टोन में बदल देती है। यहाँ पर इतना और समझना और याद रखना चाहिए कि आमाशय का रस खटाई का गुण रखने के कारण माँसवर्द्धक पदार्थ पर असर कर सकता है, पर क्लोम रस की यह खमीर उसी काम को अपने खारापन के गुण के कारण करती है। क्लोम रस के अन्दर की तीसरी खमीर (स्टीयप्सिन, steapsin or lipase) चिकनई के पदार्थों पर अपना असर डालती है और उनको एक तरह की खटाई और ग्लीसरीन में बदल देती है। इस काम में पित्त से बहुत सहारा मिलता है। साथ ही आँत की गिल्टियों से निकले हुए, रस भी अपना काम करते हैं।

ज़िगर—

जिगर (यकृत, liver) शरीर में सबसे बड़ी गिल्टी है और

इसकी थैली में एक तरह का कसैला हरा-पीला रस बनता है, जिसे **पित्त** कहते हैं। यह उदर के ऊपरी हिस्से में छाती-उदर के बीच वाली चौड़ी पेशी (महाप्राचीरा, diaphragm) के नीचे पसलियों की आड़ में दाहिनी तरफ रहती है। इसका अधिक भाग दाहिनी ओर रहता है और कुछ हिस्सा बायीं ओर आमाशय के सामने। जिगर का वज़न साधारणत. पौने दो सेर के लगभग होता है। इसके दो बड़े और दो छोटे गोलाकार खंड होते हैं। नीचे की ओर बग़ल में एक छोटी सी थैली होती है, जिसे **पित्ताशय** (**पित्त की थैली,** gall bladder) कहते हैं। जिगर में जो पित्त बनता है वह इसी थैली में इकट्ठा होता रहता है। जब आहार रस छोटी आँत के पक्वाशय नामक हिस्से में आता है तो पित्ताशय से पित्त निकल कर एक नली से पक्वाशय में ठीक उसी जगह पहुँच जाता है जहाँ पर क्लोम रस पहुँचता है। (पेज १०३ में चित्र न० ३६ देखो)

पित्त का आहार रस पर अपना असर नहीं पड़ता। वह क्लोम रस की सहायता करता है और उसके अन्दर की चिकनई को पचने योग्य बनाता है। जब छोटी आँत मे पित्त नहीं पहुँचता तो क्लोम रस को कठिनाई पड़ती है। पित्त एक और काम करता है। वह आहार रस को इस योग्य बना देता है कि वह जल्दी ख़ून में मिल सके।

पित्त बनाने के अलावा जिगर और काम भी करता है। आहार रस से ख़ून बनकर जब वह शरीर में दौरा करने के लिए आँतों से निकलता है तो पहले जिगर में पहुँचता है। जिगर उसे शरीर के तन्तु-सेलों के योग्य बनाता है। फिर शरीर में जो तन्तु-सेल टूटते-फूटते हैं उन्हें बहा कर ख़ून जिगर में आता है। जिगर उनको **यूरिया** (urea) में बदल देता है। यूरिया गुर्दों (kidneys) की क्रिया से ख़ून में से छन कर मूत्राशय में चला जाता है। जिगर का यह

काम बहुत जरूरी है। अगर किसी कारण टूटे फूटे मैलों का यूरिया न बन और यह विकार ख़ून से निकल न जाय तो शरीर के जोड़ों में दर्द होने लगता है और गठिया आदि रोग हो जाते हैं। आँत मे पित्त के पहुँचने से सड़ाव भी कम होने लगता है।

आँत का रस

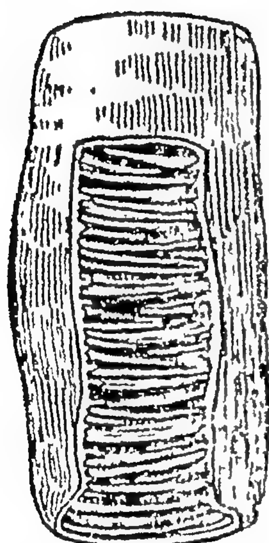
हमने यह देख लिया कि आहार रस पर क्लोम रस और पित्त का क्या असर होता है। यह भी बताया जा चुका है कि छोटी आँत की गिल्टियों से भी रस निकलता है, जो बड़े काम का है। असल में आहार रस को अच्छी तरह पचा कर खून मे मिल जाने के लायक़ बना देना इसी आँत के रस का काम है। भोजन के बिल्कुल पच जाने की आख़िरी क्रिया आँत के रस के ही सहारे होती है। श्वेतसार पदार्थों से जो शक्कर बनती है वह ग्लूकोस (glucose) के रूप में होकर ख़ून में खिंच जाने के लायक़ हो जाती है। फिर मांसवर्द्धक पदार्थों से बना पेप्टोन आँत के रस के प्रभाव से ख़ून में मिलने लायक़ एमिनो-एसिड (amino-acid) में बदल जाता है। इस तरह छोटी आँत से निकल कर बडी आँत में पहुँचने के समय तक आहार रस अच्छी तरह पच जाता है और उसके सभी अंश ऐसे बन जाते हैं कि ख़ून में आसानी से मिल कर अपने काम करने लगें। जैसा कि ऊपर बताया गया है, श्वेतसार पदार्थ आसानी से घुलने-मिलने वाली शक्कर, ग्लूकोस, में बदल जाते हैं, मांसवर्द्धक पदार्थों की एमिनो-एसिड बन जाती है और चिकनाई के पदार्थ चर्बीदार तेजाब और ग्लीसरीन में बदल जाते हैं। ये सब आपस में अच्छी तरह मिल कर धीरे धीरे छोटी आँत में पेशियों के संकोच से बडी आँत की तरफ बढ़ते हैं और इसी समय इनका सार तत्व ख़ून में भी खिंचता जाता है।

भोजन का ख़ून में मिल जाना—

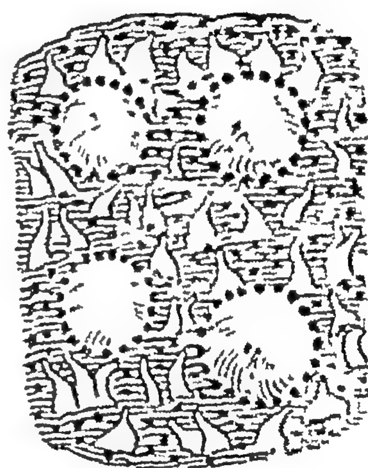
ऊपर बताई बातों से यह अच्छी तरह समझ में आ गया होगा कि खाई हुई चीज़ों में से किन किन चीज़ों पर भोजन की नली के किस हिस्से में किन किन रसों का क्या असर होता है और अन्त में आहार रस किस तरह धीरे धीरे छोटी आँत में आगे की ओर सरकता है। यह भी बताया गया है कि इसी सरकने के समय आहार रस से तत्व खिंचकर ख़ून में मिलता जाता है। भोजन के अन्तिम सारतत्व का ख़ून में मिलना किस तरह होता है, इसे अच्छी तरह समझना चाहिए।

जब आहार रस ऐसा बन जाता है कि वह ख़ून में मिल जाय तो उसका बेकार हिस्सा, जैसे फलों और भाजी के छिलके, डंठल के रेशे और चोकर इत्यादि, छोटी आँत से बड़ी आँत में चला जाता है। आहार रस का सिर्फ़ ज़रूरी हिस्सा ख़ून में मिल जाने के लिए बच रहता है। यों तो हमने देख लिया कि खाई हुई चीज़ का कुछ हिस्सा आमाशय की श्लैष्मिक झिल्ली में से ही ख़ून में खिंच जाता है, पर उसका अधिक भाग छोटी आँत की भीतरी बनावट के प्रबन्ध से ही खून में मिलता है। छोटी आँत की भीतरी तह श्लैष्मिक झिल्ली की बनी हुई है। यह तह गोल-गोल रहती है और इसके हिस्से एक दूसरे पर पड़े होते हैं, जिससे इसकी सतह का फैलाव बढ़ जाता है और आहार रस का ख़ून में खिंच जाना काफ़ी मात्रा में होता है। श्लैष्मिक झिल्ली में पतली पतली गिल्टियों के बीच बहुत से बाल जैसे बारीक उभार होते हैं, जो खींचने वाले अंकुर (ग्राहकांकुर, villi) कहलाते हैं। इन अंकुरों के भीतर बहुत सी ख़ून ले जाने वाली केशिकाएँ (बहुत बारीक नलियाँ, capillaries) रहती हैं। इनके सहारे ये खींचने वाले अंकुर अच्छी तरह पचे आहार रस के जरूरी हिस्से को पी जाते हैं, उन्हें

खींच कर खून में मिला देते हैं। अंकुरों के बनाने वाले सेल ऐसे जाने-जागने और चतुर होते हैं कि वे आँतों में से खून में मिलने के लिए तैयार पदार्थ को ले लेते हैं और उसको अपने अन्दर से और अपने अन्दर के खून के सेलों का पतला दीवार में निकालते हुए ख़ून में मिला देते हैं। यहाँ से खून का धारा उसको शरीर के सभी हिस्सों में पहुँचा देता है।



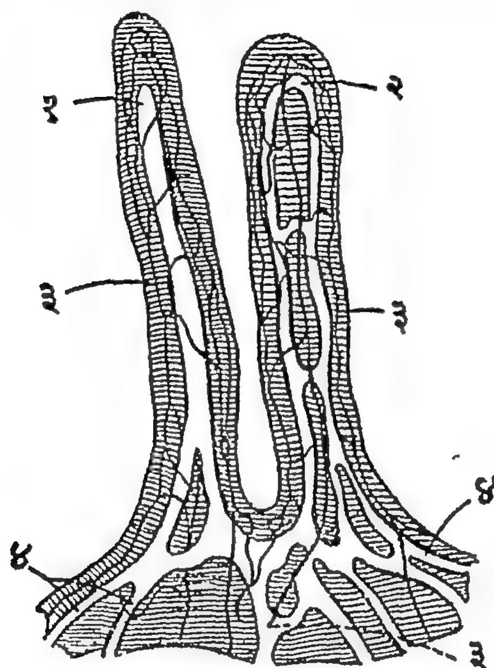
छोटी आँत का एक टुकड़ा, जिसमें अन्दर की तहें देख पड़ती हैं। चित्र नं० ३७



छोटी आँत की श्लैष्मिक झिल्ली। चित्र नं० ३८

बहुत से खीचने वाले अंकुरों की ख़ून की केशिकाएँ मिल कर शिराएँ (veins) बनाती हैं। ये शिराएं आमाशय, छोटी आँत और बड़ी आँत से आई हुई शिराओं से मिलकर एक बड़ी शिरा

बनाती हैं, जो प्रतिहारिणी शिरा (portal vein) कहलाती है। यही बड़ी शिरा जिगर मे पहुँचती है, जहाँ इससे फिर छोटी छोटी



दो खींचने वाले अकुर (बहुत बढ़ाकर)

१, २, ४—चिकनई खींचने वाली लैक्टील नलियाँ, ३— खून की नलियाँ जो चिकनई को छोड़कर पचे आहार रस को पीती हैं। चित्र नं० ३६

केशिकाएं निकलती हैं। श्वेतसार और मांसवर्द्धक पदार्थों के अंश जिगर से होते हुए खून की बड़ी नलियो में पहुँचते हैं। श्वेतसार का जो अधिक हिस्सा होता है वह जिगर मे ही रह जाता है और वहाँ उसका ग्लाइकोजेन (glycogen) बन कर फिर खून में पहुँचाया जाता है।

यहाँ पर एक समझने की बात यह है कि पचे आहार रस की चिकनई वाला हिस्सा (जो घी, तेल खाने से आहार रस में रहता है) ऊपर बताये ढग से खून में नहीं मिलता। चिकनई खून ले जाने वाली बारीक नलियों में प्रवेश नहीं कर सकती। जब कि श्वेतसार और मांसवर्द्धक पदार्थों का पचा हुआ अश खींचने वाले अकुरो की बारीक नलियो में जाता है, चिकनई का हिस्सा अकुरो की **लैक्टील** (**रस हारिणी,** lacteal) नलियों में खिंच जाता है। इन नलियों का नाम 'लैक्टील' इसलिए हुआ कि भोजन पचने के समय वे दूध से भरी हुई मालूम होती हैं। ये लैक्टील नलियाँ मिलजुल कर **लसीका-नलियाँ** नाम की बडी नलियाँ बनाती हैं। इस तरह धीरे धीरे चिकनई का हिस्सा शरीर के ऊपरी भाग की ओर बढ़ता है और अत मे गर्दन के पास शरीर के बायें हिस्से में एक बड़े शिरे में पहुँच कर ख़ून के दौरान में प्रवेश करता है।

आहार रस का ख़ून में मिल जाना ज़रूरी है—

ऊपर बताई बातो से यह मालूम होता है कि भोजन का सारतत्त्व किस तरह खून में मिलता है। असल आहार रस के खून में मिल जाने से ही, न सिर्फ भोजन करने से, शरीर अच्छी हालत में रह सकता है। यह तभी हो सकता है जब कि खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह पच जाय। बहुत से लोग सिर्फ स्वाद के लिए खाते हैं। वे इसकी चिन्ता नहीं करते कि भोजन पचेगा या नहीं। ऐसे ही लोग बीमार रहा करते हैं। भोजन ठीक ठीक पचे, इसके लिए यह जरूरी है कि भूख होने पर ही उचित पदार्थ खाया जाय, खाते समय भोजन को अच्छी तरह चबाने के लिए दाँतों का पूरा प्रयोग किया जाय, और पाचन-शक्ति को अच्छी हालत मे रखने के लिए कसरत की जाय।

बड़ी आँत

यह हमने देख लिया कि पचे हुए भोजन का बहुत सा अंश छोटी आँत में ही सोख लिया जाता है। बचा हुआ अंश, जो कुछ पानीदार ढीला पदार्थ होता है, बडी आँत में चला जाता है। अगर कुछ सोखने लायक़ अश अब भी बच रहा है तो बड़ी आँत उसे सोख लेती है। इसके अलावा वह उस पानीदार ढीले पदार्थ में से पानी भी सोख लेती है, जिससे ठोस मल ही बडी आँत मे बच रहता है। यह मल बडी आँत की पेशियो के बार बार सिकुडने से आगे बढ़ता है और अंत में मलद्वार से बाहर फेंक दिया जाता है।

खाइ हुई चीज़ के इस बचे अश में, जिसे अब 'मल' के नाम से पुकारा जा रहा है, भोजन के बे-पचे अंश, ऐसे अंश जो सोखे नही जा सकते, पाचक रस का कुछ भाग, नष्ट-भ्रष्ट हुए कोष और कीड़े रहते हैं। मल के सड़ने के कारण ये कीड़े पैदा हो जाते हैं और यद्यपि पित्त का अश बड़ी आँत में भी पहुँचकर बहुत कुछ सफ़ाई की क्रिया करता है फिर भी बहुत से कीडे पैदा हो जाते हैं। सड़न के कारण मल में बदबू आ जाती है और यह ज़रूरी है कि यह मल नियमित रूप से हर रोज़ शरीर के बाहर निकल जाय।

भोजन पचने और मल निकलने का समय—

जिस समय भोजन मुँह में रखा जाता है उस समय से लेकर उसके पचने और सारतत्व के शरीर में सोखे जाने के बाद बचे-खुचे अंश के मलद्वार से बाहर निकलने तक मे लगभग २४ घंटे लग जाते हैं। यह इस पर निर्भर है कि आदमी की तनदुरुस्ती कैसी है और भोजन सादा और जल्द पचने वाला है या देर मे पचनेवाला। अगर आदमी तनदुरुस्त है और भोजन पुष्टिकर होते हुए भी सादा है तो लगभग २० घंटे में सारी क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं,

लेकिन इसके विपरीत अवस्था में कभी कभी २४ घंटों में भी ज्यादा समय लग जाता है। भोजन को आमाशय से निकल कर छोटी आँत में ही आने में ३-४ घंटे, कभी कभी इससे ज्यादा लगते हैं।

प्लीहा

पचाने वाले यन्त्रों से प्लीहा (तिल्ली, सिह्री) का इतना सरोकार है कि उसका कुछ वर्णन यहाँ दे देना ज़रूरी मालूम होता है, पर यह जानना चाहिए कि प्लीहा पाचन या पोषण संस्थान का अंग नहीं है।

बाईं कोख में पीछे की तरफ आमाशय और महाप्राचीरा के बीच में प्लीहा पड़ी हुई है। यह एक गिल्टी है, जो लगभग ५ इंच लंबी और ३ इंच चौड़ी है। इसका वजन लगभग एक पाव के होता है। इसका रंग नीलापन लिये हुए लाल है।

यह अभी तक अच्छी तरह मालूम नहीं हुआ है कि प्लीहा शरीर में क्या काम करती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ख़ून के कुछ तत्वों पर इसका कोई विशेष प्रभाव पड़ता है और यह भी कि जब ख़ून का दौरान ज्यादा तेज हो जाता है तो प्लीहा उसे अपनी ओर खींच कर दूसरे अंगों को पीड़ा पहुँचाने से बचाती है। वह ख़ून के विकारों को भी अपने में खींच लेती है। इसी से देखा जाता है कि बहुत दिनों तक चलने वाले बुखार में प्लीहा बढ़ जाती है। स्पंज की तरह बनी होने के कारण प्लीहा ख़ून की बढ़ी हुई मात्रा को आसानी से सोख सकती है।

प्लीहा के संबंध में इतना और मालूम है कि इसी में ख़ून के सफ़ेद कण (कार्पस्लस, white corpuscles) बनते हैं और लाल कण (ख़ून के लाल कोष, red corpuscles) टूटते फूटते रहते हैं। जो लाल कण शरीर में अपना काम कर चुकते हैं वे प्लीहा में ही नष्ट होते हैं।

बड़े काम की गिल्टियाँ

यह हम जानते हैं कि हमारे शरीर में बहुत सी गिल्टियाँ (ग्रथियाँ, glands) हैं। उँगली से टटोल कर देखने से गर्दन में गिल्टियाँ मालूम होती हैं। दोनो जाँघो में भी भीतर की ओर गिल्टियाँ रहती हैं और बगल में भी टटोलने से गिल्टियों का पता चलता है।

ऊपर बताया गया है कि जीभ के आस-पास की गिल्टियो से लार निकलती है, जिससे भोजन के पचने में मदद मिलती है। फिर आमाशय और आँतों मे भी गिल्टियाँ हैं, जिनसे पचाने वाले रस निकलते हैं। जिगर और क्लोम नाम की दो गिल्टियों के संबध में भी हम पढ़ चुके हैं। इस तरह हम गिल्टियो से अच्छी तरह परिचित हैं और हम यह भी समझते हैं कि ये गिल्टियाँ बड़े काम की हैं।

गिल्टियों का असल काम रस बनाने का है। रस कई तरह के बनते हैं और शरीर की अलग-अलग जरूरतों को पूरा करते हैं। अगर किसी गिल्टी के रस की जरूरत उसके समीप न होकर कुछ दूर पर होती है तो उस गिल्टी से एक नली निकल कर उस अग या जगह तक जाती है जहाँ रस की जरूरत होती है। यह नली उस खास रस की **प्रणाली** (duct) कहलाती है। जिगर के बारे में पढते हुए हमने देखा है कि जिगर से एक नली निकल कर छोटी आँत के पक्वाशय नामक हिस्से मे आती है। इसी तरह क्लोम से भी एक नली निकल कर छोटी आँत में पहुँचती है। हम आगे पढ़ेंगे कि गुर्दे से पेशाब की नली निकलती है।

इन नली वाली गिल्टियों के अलावा कुछ ऐसी भी गिल्टियाँ हैं, जिनके रस शरीर के किसी खास हिस्से के लिए न बनकर सारे शरीर के लिए बनते हैं। इस लिए इन गिल्टियों से नली निकल कर शरीर के दूसरे हिस्से में नहीं पहुँचते। इनके रस गिल्टियों के लसीका या खून में मिल जाते हैं और खून के दौरान (रक्त-संचार) मे पडकर शरीर के सभी अंगों में पहुँचते हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इन गिल्टियो से नली नही निकलती, इसलिए ये **बिना नली की गिल्टियाँ (प्रणाली-विहीन ग्रंथियाँ,** ductless glands) कही जाती हैं।

बिना नली की गिल्टियों का पता बहुत दिनों तक नहीं चला। अब जो बातें इनके संबंध में मालूम हुई हैं उनसे पता चलता है कि ये गिल्टियाँ भी बडे काम की हैं और कई तरह से शरीर को लाभ पहुँचाती हैं। ऐसी गिल्टियों में **चुल्लिका** (कंठमणि, thyroid), **उपचुल्लिका** (para-thyroid), **थाइमस** (thymus), **पिनियल** (pineal), **पिट्यूट्री** (pituitary) और **उपवृक्क की गिल्टियाँ** (suprarenal bodies) मुख्य हैं। ये गिल्टियाँ बहुत छोटी होती हैं।

क्लोम नाम की गिल्टी से एक नली निकलती है, जिससे उसका रस पक्वाशय में पहुँचता है, पर क्लोम का एक भीतरी रस भी है जो सीधा खून में पहुँच जाता है। इससे क्लोम की गिनती भी बिना नली की गिल्टियो मे की जा सकती है। क्लोम के इस भीतरी रस के सहारे ततु श्वेतसार के अंश को जलाकर शरीर में लग जाने के लायक बना लेते हैं। अगर क्लोम का यह भीतरी रस खून मे नहीं पहुँचता या थोडी मात्रा में पहुँचता है तो श्वेतसार नहीं जलता बल्कि खून में इकट्ठा होता है, जिससे पेशाब में शक्कर पाई जाती है। क्लोम के भीतरी रस के न रहने के कारण पेशाब

में शकर आने की अवस्था को मधुमेह या बहुमूत्र रोग (diabetes, डायबेटीज़) कहते हैं।

चुल्लिका गिल्टी—

यह गिल्टी बड़े महत्व की है। इसके रस का प्रभाव सारे शरीर पर पडता है। उससे शरीर की रासायनिक क्रिया अच्छी होती है और शरीर पूरा पूरा बढ़ पाता और पुष्ट होता है। अगर लड़कपन से ही इस गिल्टी का रस ख़ून में अच्छी तरह न पहुँचे तो शरीर और मन का पूरा विकास नहीं होता, और लड़का कमज़ोर शरीर वाला और मन्दबुद्धि हो जाता है। इस लिए यह ज़रूरी है कि हर रोज़ इस गिल्टी का रस रक्त सचार में पहुँचा करे।

इस गिल्टी का रग भूरापन लिये लाल है। यह हलक़ के ठीक सामने रहती है। इसके दो छोटे छोटे हिस्से होते हैं, जो टेंटुआ के इधर-उधर रहते हैं और एक तग हिस्से से जुड़े रहते हैं। इसका आकार देशी चूल्हे से मिलता-जुलता है, इसी से इसे चुल्लिका कहते हैं। गिल्टी के बढ जाने की अवस्था को घेघा रोग कहते हैं।

चुल्लिका के रस की कमी की अवस्था में चुल्लिका के सत का प्रयोग किया जाता है। काफी मात्रा में दूध पीने से भी चुल्लिका अपना काम अच्छी तरह करती है।

उपचुल्लिका गिल्टियाँ—

ये गिल्टियाँ मटर के बराबर और उसी के आकार की होती हैं। दो गिल्टियाँ चुल्लिका के दाहिने और दो बायें खड के पिछले किनारों से लगी रहती हैं। इनके निकाल देने से या इनके विकार से पेशियाँ सिकुड़ती हैं और टेटनी (tetany) रोग होता है।

थाइमस गिल्टी—

इसका कुछ हिस्सा छाती में छाती की हड्डी (sternum) के पीछे और कुछ गर्दन के निचले भाग में रहता है। इसका रंग गुलाबी लिये हुए धूसर रहता है। यह लगभग २½ इंच लंबी और १ इंच चौडी होती है। यह १४-१५ वर्ष तक बढ़ती जाती है और फिर धीरे धीरे छोटी होने लगती है। इसके काम का ठीक ठीक पता अभी नहीं चला है, पर ऐसा समझा जाता है कि इसे निकाल देने या इसके विकार युक्त होने से आदमी छोटा और दुबला हो जाता है। इसके विकार से ही मनुष्य बौना रह जाता है और कभी कभी एक प्रकार का श्वास-रोग भी होता है।

पीनियल गिल्टी--

यह गिल्टी बादाम जितनी बडी होती है और मस्तिष्क की नली मे रहती है। ऐसा समझा जाता है कि इस गिल्टी का असल काम है औरत या मर्द के चिन्हों को समय के पहले प्रकट होने से रोकना।

पिट्यूट्री—

यह एक छोटी सी लाल रग लिये हुए भूरी गिल्टी है, जो मस्तिष्क के नीचे की नली से लटकती रहती है। इसके दो अलग-अलग हिस्से हैं और दोनों से दो तरह के रस निकलते हैं। सामने के हिस्से के रस से शरीर यथोचित बढता और पुष्ट होता है और अगर उसका प्रभाव जरूरत से अधिक पडा तो शरीर बहुत लंबा होता है या हाथ-पैर बहुत बडे और खोपड़ी भी बड़ी सी होती है। अगर इस हिस्से से काफ़ी मात्रा मे रस नहीं निकलता तो बच्चे पूरा पूरा बढ़ नही पाने। इस गिल्टी के पिछले हिस्से के रस का असर आँत, ख़ून ले जाने वाली नलियाँ और गुर्दों पर पड़ता है।

अगर यह रस काफी मात्रा में नही बनता तो भोजन के श्वेतसार पदार्थ गर्मी और फुर्ती न पैदा कर चिकनई में बदल जाते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि ऐसा आदमी मोटा और चिन्ता रहित होता है। उसे भूख बहुत लगती है। वह मीठी चीजें बहुत पसन्द करता है, पर वह काम करना नहीं चाहता।

उपवृक्क की गिल्टियाँ—

ये दो छोटी छोटी पीली सी गिल्टियाँ हैं, जो उदर मे दोनों गुर्दों के ऊपरी सिरे पर पाई जाती हैं। इसके रस का काम है खतरे या किसी और आवश्यकता के अवसर पर शरीर को चौकन्ना बनाना। जभी खतरा सामने आता है स्नायु-प्रणाली की प्रेरणा से ये गिल्टियाँ अपने रस को रक्त सचार में डाल देती हैं। जैसे जैसे खून के साथ रस शरीर के भिन्न-भिन्न अगों में पहुँचता है वे खास तौर में प्रभावित होते हैं। दिल तेजी से धडकने लगता है, खुन ले जाने वाली बारीक नलियाँ फैल जाती हैं, पसीना निकालने वाली गिल्टियाँ अपना काम तेजी से करने लगती हैं, जिससे कि शरीर ठंडा बना रहे, पचाने वाले अग की क्रिया मन्द पड जाती है, जिगर में इकट्ठी शकर बाहर निकल आती हैं, जिससे पेशियों में गर्मी और फुर्ती का सचार हो, रोंगटे खड़े हो जाते हैं, आँखें बडी सी दिखती हैं और पुतलियाँ फैल जाती हैं, जिससे आदमी डरावना मालूम हो। ये सारी बाते इसी लिए होती हैं कि खतरे का अच्छी तरह सामना किया जा सके।

ख़ून

यह बताया गया है कि शरीर की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शरीर में ही सभी तरह के प्रबंध हैं। शरीर की पुष्टि और जीवन के लिए सभी अंगों में खून पहुँचाने का इन्तजाम है। यह शरीर असंख्य सेलों का बना है और हर सेल को भोजन की जरूरत है। यह भी जरूरी है कि हर सेल में से विकार बाहर निकाल दिया जाय और पुराने और घिसे सेलों की मरम्मत होती रहे। सेलो तक भोजन पहुँचाने और उनकी मरम्मत की सामग्री जुटाने के अलावा उनके विकारो को वहा ले जाना भी खून का ही काम है।

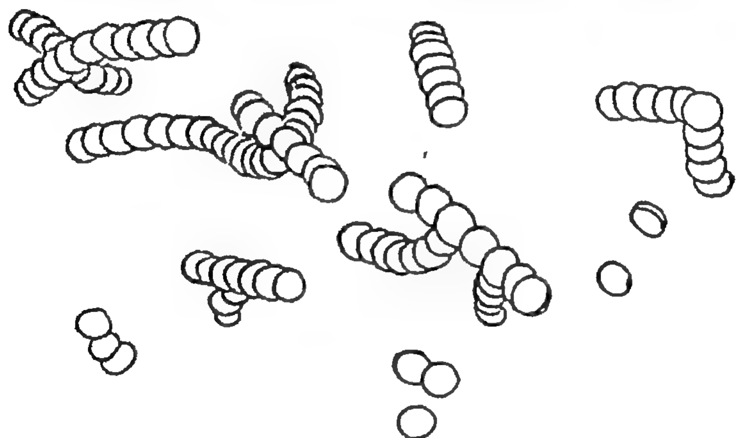
यह भी बताया जा चुका है कि भोजन से बने खून को सारे शरीर में पहुँचाने के लिए दिल (हृदय) दिन-रात मेहनत करता है और वही खून को सारे शरीर में भेजता है। अब यह बताया जायगा कि ख़ून क्या है और दिल किस तरह अपना काम करता है।

ख़ून—

ख़ून चमकीले लाल रंग का कुछ गाढ़ा गाढ़ा तरल पदार्थ है। यह सारे शरीर में बराबर ही दौरा करता है और इसका वज़न लगभग ६ सेर है। असल में खून के पानी (तरल पदार्थ) का, जिसे **रक्तवारि** (plasma) कहते हैं, अपना कोई ख़ास रंग नहीं है। उसमें असंख्य लाल सेल तैरते रहते हैं, जिससे ख़ून भी देखने मे लाल मालूम होता है।

ख़ून में तैरने वाले सेल, जिन्हें अब हम **रक्तकण** (corpuscles) कहेंगे, दो प्रकार के होते हैं (१) **लाल रक्तकण** और (२) **सफ़ेद या बिना किसी ख़ास रंग वाले रक्तकण** ।

लाल रक्त कण छोटे छोटे गोल पदार्थ हैं, जो दोनो तरफ़ से कुछ पिचके होते हैं। ये इतने छोटे होते हैं कि अगर किनारे से किनारा लगाकर रखे जायँ तो एक वर्ग इंच की जगह में लगभग दस करोड लाल रक्तकण आ जायँगे। इन्हें निरी आँखो से देख सकना असभव है। ख़ुर्दबीन से देखे जाने पर प्रत्येक कण पीला सा दिखता है, पर जब बहुत से कण इकट्ठे और एक दूसरे पर पड़े रहते हैं तो उनका सामुहिक रंग लाल दिखाई देता है—इसी



लाल रक्त कण। चित्र न० ४०

कारण ख़ून भी लाल दिखता है। लाल रक्तकण की बाहरी बनावट एक लचीले खोल की तरह होती है और उसके अन्दर एक रंग होता है, जिसे **रक्तग्लोबिन या हेमोग्लोबिन** (haemoglobin) कहते हैं। इस पदार्थ का ख़ास गुण यह है कि वह आक्सीजन को

अपने में मिला लेता है। जब खून अपने दौरान मे फेफडो में पहुँचता है तो वहाँ साँस ली हुई हवा की आक्सीजन के सपर्क में वह आता है। जैसे ही वह आक्सीजन के सपर्क में आता है वैसे ही उसके लाल रक्त कणो के हेमोग्लोबिन को आक्सीजन घुला लेती है, और फिर जैसे जैसे खून विविध अगो मे पहुँचता है हेमोग्लोबिन अपने साथ मिली हुई आक्सीजन को सेलो के पोषण के लिए तन्तुओ में छोडते जाते हैं। जब हेमोग्लोबिन आक्सीजन के साथ मिलता है तो वह चमकीला लाल हो जाता है, और तब उसे आक्सीहेमोग्लोबिन (oxyhaemoglobin) कहते हैं। इस तरह हमने देख लिया कि लाल रक्तकणों का खास काम फेफड़ों से आक्सीजन लेकर उसे तन्तुओ में छोड आना है। जन्म के पहले बच्चे के बनते हुए शरीर के जिगर और सीहा मे ये लाल रक्त-कण बनते हैं। बडे होने पर ये हड्डी के अन्दर के गूदा में तैयार होते हैं।

सफ़ेद रक्त कणों का असल में कोई खास रंग नही होता। उनका आकार भी एक तरह का नहीं होता। जैसा कि पहले (पृष्ठ २६ में) बताया जा चुका है उनका आकार तालाब के पानी में तैरने वाले एक-सेल-धारी जीव 'अमीबा' के आकार सा होता है। ये सफ़ेद रक्तकण अपने आकार बराबर बदलते रहते हैं और अक्सर अपने को दबाकर बहुत बारीक ख़ून की नलियों से इधर से उधर निकल जाते हैं। बाहर से ख़ून मे आये हुए विकारों और बीमारी के छोटे-छोटे कीड़ों के चारों तरफ़ लिपट कर ये उनको अपने में सोख लेते हैं, और इस तरह ये शरीर को बीमार होने से बचाते हैं। जब किसी क़ारण से ये बाहरी विकारों को सोख नहीं सकते तभी शरीर रोग-ग्रस्त होता है। सफ़ेद कणो की सख्या लाल कणों से बहुत कम है। हर ५०० या ६०० लाल कण के पीछे १

सफ़ेद कण शरीर में पाया जाता है। ये कण हड्डी के अन्दर के गूदे, लसीका वाली गिल्टियों और सीहा और आँतों के अन्दर के तन्तुओं में बनते हैं।

रक्त वारि (ख़ून का पानी) ज़रा पीलापन लिये हुए लाल पदार्थ है, जिसमें इस पार से उस पार देख सकते हैं और इसी लाल पदार्थ में लाल और सफ़ेद रक्त कण तैरते रहते हैं। इसके १०० भागों में ९० भाग पानी और १० भाग उसी पानी में घुले रासायनिक वस्तुओं के होते हैं। इन रासायनिक पदार्थों में तीन तरह के मांसवर्द्धक पदार्थ (प्रोटीन), बहुत तरह के प्राकृतिक नमक, जिनमें साधारण नमक का बहुत अंश रहता है, और बहुत थोड़ी सी चिकनई रहती है। इनके अलावा रक्तवारि में कार्बन डाइआक्साइड, आक्सीजन और नाइट्रोजेन गैसें भी रहती हैं। कार्बन डाइआक्साइड तो ख़ास कर पानी (रक्तवारि) में रहती है लेकिन आक्सीजन, जैसा कि ऊपर बताया गया है, लाल कणों के हेमोग्लोबिन से मिली हुई होती है। इस तरह वे सभी पदार्थ, जिनसे शरीर के विविध तन्तु बने हैं, ख़ून में पाये जाते हैं। इन सब के अलावा कुछ खट्टे विकार-युक्त पदार्थ भी, जैसे यूरिया, यूरिक एसिड आदि जो शरीर में हर समय बनते रहते हैं, इसमें आ मिलते हैं और पेशाब और पसीना के रूप में बाहर फेंके जाते हैं।

ख़ून का जम जाना—

शरीर से बाहर निकलने के थोड़ी देर बाद ख़ून तरल नहीं रहता बल्कि गाढ़ा होने लगता है। बाहरी हवा के सम्पर्क से कुछ ही समय में वह जम जाता है। तब एक लाल छिछड़ा सा बन जाता है, जिससे एक हलका पीला पानी सा पदार्थ निकलता है, जिसे रक्तरस (plasma) कहते हैं। ख़ून के इस तरह गाढ़ा होने का कारण यह है कि शरीर से बाहर आने पर इसके अन्दर

घुला-मिला हुआ एक प्रोटीन, जिसे फ़ाइब्रिनोजेन (fibrinogen फ़ाइब्रिन जनक) कहते हैं, फ़ाइब्रिन (fibrin) में बदल जाता है। फ़ाइब्रिन जाल जैसा एक पदार्थ है जिसमें बहुत छोटे छोटे तार होते हैं। इन्हीं तारों में रक्तकण फंस जाते हैं, जिससे ख़ून का थक्का (थाक) बंध जाता है।

ख़ून के जमने से एक लाभ ज़रूर होता है। ज़ख्म के मुँह पर ख़ून के जमने से कटी हुई ख़ून की नली बंद हो जाती है और तब ख़ून नहीं निकलता। अगर ऐसा न हो तो ज़्यादा चोट लगने के कारण किसी बड़ी नली के कट जाने पर शरीर से इतना ख़ून निकल जा सकता है कि मौत ही हो जाय।

ख़ून का काम—

शरीर के हर हिस्से के तन्तुओं और सेलों तक आक्सीजन पहुँचाना और उनको और और पोषक पदार्थ दे आना, साथ ही उनसे कार्बन डाइआक्साइड और दूसरे दूसरे विकारों को ले आना ख़ून का असली काम है। इस संबंध में यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि हम जो खाते हैं उसी से ख़ून बनता है और अच्छा या बुरा जैसा भी ख़ून बनेगा उसी के कारण तनदुरुस्ती भी अच्छी या बुरी होगी। खाई चीज़ों से पौष्टिक पदार्थ लेकर ख़ून शरीर के हर हिस्से में पहुँचता है और उससे तन्तु अपनी आवश्यकता के अनुसार अपने लायक़ पदार्थ ले लेते हैं। इसके बदले तन्तु अपने अन्दर के विकार और टूटे-फूटे हिस्से ख़ून को दे देते हैं। ख़ून अपने दौरे में जब गुर्दे या खाल के पास आता है तो इन विकारों को पेशाब या पसीने के रूप में निकाल देता है। इसी तरह फेफड़ों में आई हुई हवा से आक्सीजन लेकर ख़ून उसे तन्तुओं तक पहुँचा देता है और उसके बदले विकार-युक्त कार्बन डाइआक्साइड लेकर घूमता हुआ फिर

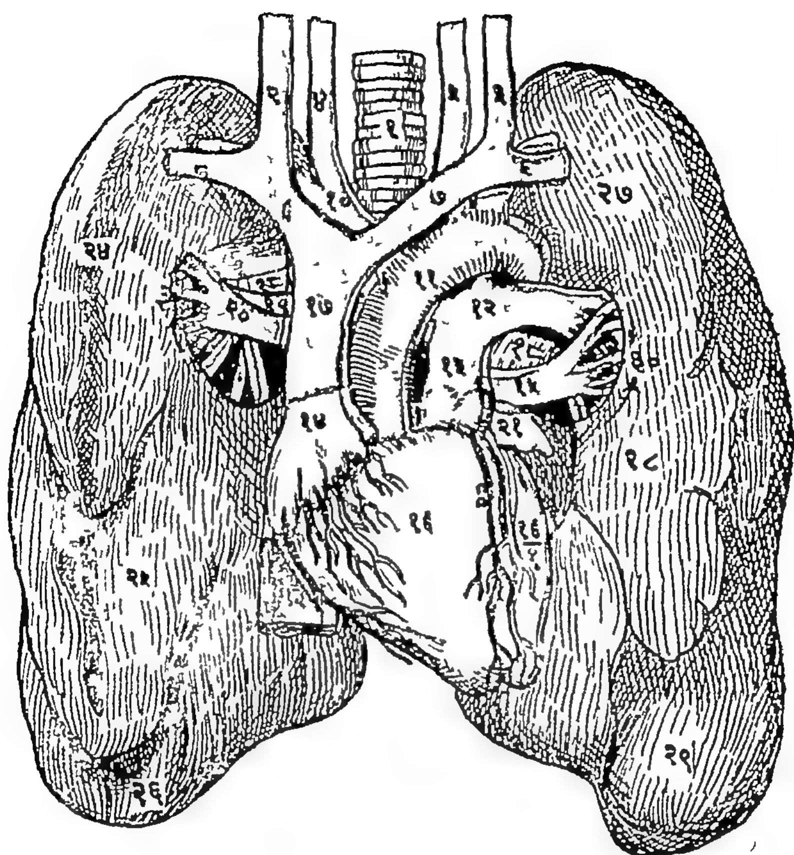
फेफड़ों में पहुँचता है। फेफड़ों में पहुँच कर यह इस विकार को बाहर जाने वाली साँस के साथ बाहर निकाल देता है और साँस के साथ अन्दर आई हुई आक्सीजन को ले लेता है।

ऊपर की बातों से यह सिद्ध है कि ख़ून की उपयोगिता दो बातों पर निर्भर है—(१) अच्छा भोजन, जिससे अच्छा ख़ून बनेगा और (२) साफ़ हवा में ज्यादा से ज्यादा रहना, कसरत करना और गहरी साँस लेना, जिससे ज्यादा आक्सीजन ख़ून में पहुँच सकेगी।

ख़ून का दौरान

ख़ून शरीर के अंग अंग में बराबर ही चक्कर लगाया करता है। ख़ून की इस क्रिया को ख़ून का दौरान (रक्त संचार, रक्तपरिभ्रमण) कहते हैं। अब यह समझना है कि ख़ून किस तरह अपना दौरा करता है—कहाँ से और कैसे वह चलता है, किन रास्तो से जाता है और किन रास्तो से वापस आता है।

ख़ून का दौरान दिल (हृदय) से शुरू होता है। दिल सिकुड़ कर ख़ून को अपने बाहर निकालता है और ख़ून खास नलियों से होकर शरीर में जाता है। यह हम पढ़ चुके हैं कि ख़ून हर अंग के तन्तुओ को पोषक पदार्थ दे आता है और उनके विकारो को लेकर वापस आता है। जब ख़ून दिल से निकलता है तब वह शुद्ध और पोषक पदार्थों से लदा होता है। यह शुद्ध ख़ून लाल होता है और उन नलियो से होकर जाता है, जिन्हें **धमनियाँ** (arteries) कहते हैं। धमनियों की बहुत सी बड़ी-छोटी शाखाएँ होती हैं। सब शाखाओं से होता हुआ ख़ून बाल जैसी पतली-पतली नलियो में फैल जाता है। इन पतली नलियों को **केशिकाएँ** (capillaries) कहते हैं। इन्हीं बारीक नलियों के सहारे ख़ून अंग-प्रत्यंग में पहुँचाता है और तन्तुओ को पोषक पदार्थ देता है। तन्तुओं को पोषक पदार्थ देने के बाद जब वह उनके विकारो को ले लेता है तब वह मैले लाल रंग का हो जाता है और **शिराओं** (veins) से हो कर दिल मे वापस आता है। (शिराएँ वे नलियाँ हैं, जो केशिकाओ के मिलने से बनती हैं।)



टेंटुआ , २, ३, ६, ८, ७, ६—शिराएँ , ४, ५, १०—धमनियाँ , ११—बडी धमनी , १२, १३ – फेफडों वाली धमनी , १४—दाहिना ग्राहक कोष्ठ , फेफडों वाली शिरा , १६—दाहिना क्षेपक कोष्ठ , १६, १—बायाँ क्षेपक कोष्ठ , १७—ऊपरी बडी शिरा , २१—बायाँ ग्राहक कोष्ठ , २३, २४—दाहिना फेफडा , २७, २८ इत्यादि—बायाँ फेफडा, फेफडे, दिल और उसकी नलियाँ । चित्र न० ४१

फिर दिल ख़ून को फेफड़ों में भेजता है। वहाँ अशुद्ध ख़ून अपने विकार को बाहर जाने वाली हवा के साथ नाक के रास्ते बाहर भेज देता है और साँस के साथ आई हुई आक्सीजन से मिल कर फिर शुद्ध और लाल हो जाता है। इस तरह शुद्ध होकर ख़ून फिर दिल में आता है, और दिल से सारे शरीर में चक्कर लगाने के लिए भेजा जाता है। यही संक्षेप में ख़ून के चक्कर लगाने की कहानी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस सारी क्रिया में दिल का बहुत बड़ा हाथ है।

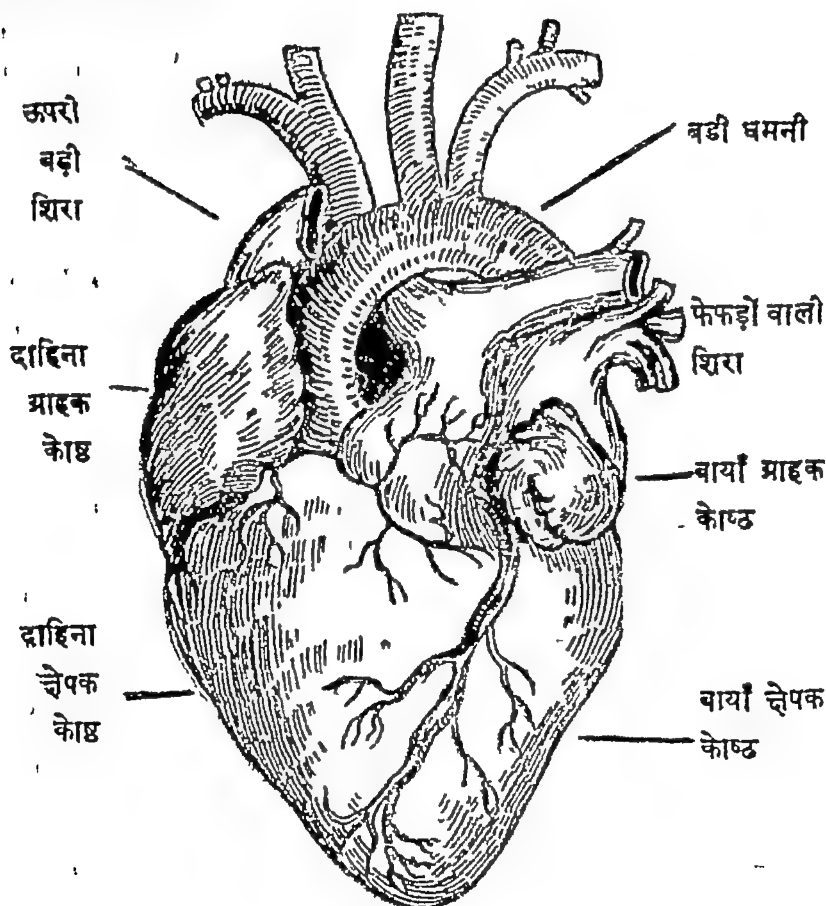
दिल (हृदय)—

साधारण तौर से हम जानते हैं कि दिल बराबर धड़का करता है। धड़कन का मतलब है कि दिल ख़ून को पम्प कर रहा है, अपने बाहर निकाल रहा है। दिल तब तक धड़कता है जब तक शरीर जीवित है। दिल की धड़कन बन्द होने के साथ ही शरीर मुर्दा हो जाता है। दिल की धड़कन ही नाड़ी में गति पैदा करती है। दिल ही वह यन्त्र है जो ख़ून को सारे शरीर में भेजता है।

दिल स्वाधीन (involuntary, मनुष्य की इच्छा के वश न रहने वाली) पेशियों से बना है। यह छाती के गड्ढे में दोनों फेफड़ों के बीच में है। किसी भी आदमी का दिल आकार और लंबाई-चौड़ाई में उसकी बन्द मुट्ठी की तरह होता है। कहा जाता है कि दिल फेफड़ों के बीच में है, पर वह ठीक बीचो-बीच नहीं है। उसका एक-तिहाई हिस्सा दाहिनी ओर और दो-तिहाई हिस्सा बाईं ओर झुका होता है। दिल एक सौत्रिक तन्तु (fibrous tissue) की बनी थैली में पड़ा रहता है। इसे दिल की थैली (हृदय कोष, हृदावरण, pericardum) कहते हैं। इस थैली की दीवार पतली पर दो-तहों वाली होती है, और इससे एक तरह का बहुत

थोड़ा सा रस निकलता रहता है, जो दिल को गीला रखता है और उसकी हरकतों में सहारा देता है।

दिल अन्दर से खोखला है। इसके भीतर का हिस्सा एक खड़े मांस के परदे से दो कोठरियों में बँटा हुआ है। एक कोठरी



क = फेफड़ों वाली धमनी

दिल, सामने से। चि० नं० ४२

दाहिनी तरफ़ है और दूसरी बाईं तरफ़, पर दोनो का आपस में लगाव नहीं होता एक कोठरी दूसरे से बिल्कुल अलग है। फिर हर कोठरी मे दो खाने (कोष्ठ) रहते हैं। ऊपर के खानों को ग्राहक कोष्ठ (auricles, ख़ून पाने वाली कोठरियाँ) और नीचे के खानों को क्षेपक कोष्ठ (ventricles, ख़ून भेजने वाली कोठरियाँ) कहते हैं। इस तरह दिल में चार छोटी छोटी कोठरियाँ या खाने हुए—दाहिना ग्राहक कोष्ट, बायाँ ग्राहक कोष्ठ, दाहिना क्षेपक कोष्ठ और बायाँ क्षेपक कोष्ठ। जिस छत से ऊपर का खाना नीचे के खाने से अलग रहता है वह पतले पतले किवाड़ों से बनी है। ये किवाड़ सौत्रिक तन्तु के बने हैं और इस तरह लगे हुए हैं कि ये नीचे की तरफ़ खुलते हैं पर ऊपर की तरफ़ नहीं। इससे यह होता है कि ख़ून ग्राहक कोष्ठ से उतर कर क्षेपक कोष्ठ में तो आ जाता है, पर फिर उलटा ऊपर को नहीं लौट सकता। दाहिनी ओर तीन तिकोनिए किवाड़ (tricuspid) होते हैं और बाईं ओर सिर्फ़ दो कोने के (bicuspid or mitral)। किवाड़ो से बने इस यन्त्र को कपाट (valve) कहते हैं। इन कपाटों से लेकर क्षेपक कोष्ठों तक मांस के छोटे छोटे बंधन चले गये हैं। ये बंधन इन कपाटों को इस तरह पकड़े रहते हैं कि उनका मुँह ग्राहक कोष्ठ मे नहीं खुल सकता। जब ग्राहक कोष्ठ सिकुड़ते है तो किवाड़ों के कोने अलग अलग हो जाते हैं और ख़ून आसानी से क्षेपक कोष्ठों में उतर आता है। फिर जब ख़ून को बाहर निकालने के लिए क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ते हैं तो उन कोष्ठों के अन्दर के ख़ून के दबाव से किवाड़ो के कोने ऊपर उठकर आपस में मिल जाते हैं, जिससे यह होता है कि ख़ून लौटकर ग्राहक कोष्ठ में नहीं आ सकता। यह आशंका हो सकती है कि ये किवाड़ आपस मे मिलने के बदले कहीं ग्राहक कोष्ठो में अन्दर की तरफ़ न चले जायँ और खुले ही रह

जायँ, पर ऊपर बताये गये मांस के छोटे-छोटे बंधनों के खिचाव से ये किवाड़ अन्दर की तरफ नहीं जा पाते। इससे यह होता है कि ख़ून ग्राहक कोष्ठों में नहीं लौटता बल्कि क्षेपक कोष्ठों के बाहर निकलता है।

दिल का काम—

अब इन कोष्ठों के काम समझना आवश्यक है। ग्राहक कोष्ठों का काम है ख़ून को ग्रहण करना, अपने अन्दर लेना और क्षेपक कोष्ठों का काम है ख़ून को बाहर निकालना। इसी आवश्यकता के अनुसार ये कोष्ठ बने भी हैं। ग्राहक कोष्ठों की दीवारें कुछ पतली होती हैं और क्षेपक कोष्ठों की दीवारें उनसे मोटी। ग्राहक कोष्ठ का काम सिर्फ ऊपर से नीचे ख़ून को भेजना है, इसलिए वह बहुत मज़बूत नहीं बना है। फिर बायें क्षेपक कोष्ठ की दीवारें दाहिने क्षेपक कोष्ठ की दीवारों से दुगुनी तिगुनी मोटी होती हैं। बात यह है कि बायें क्षेपक कोष्ठ का काम है शुद्ध ख़ून को सारे शरीर में भेजना, इसी लिए इसकी बनावट ज़्यादा मज़बूत है। क्षेपक कोष्ठों में ख़ून कुछ ज़्यादा भरता है बनिस्बत ग्राहक कोष्ठों के। हर क्षेपक कोष्ठ की समाई लगभग १¾, १½ छटाँक के हैं। ग्राहक कोष्ठ की समाई इससे कुछ कम है।

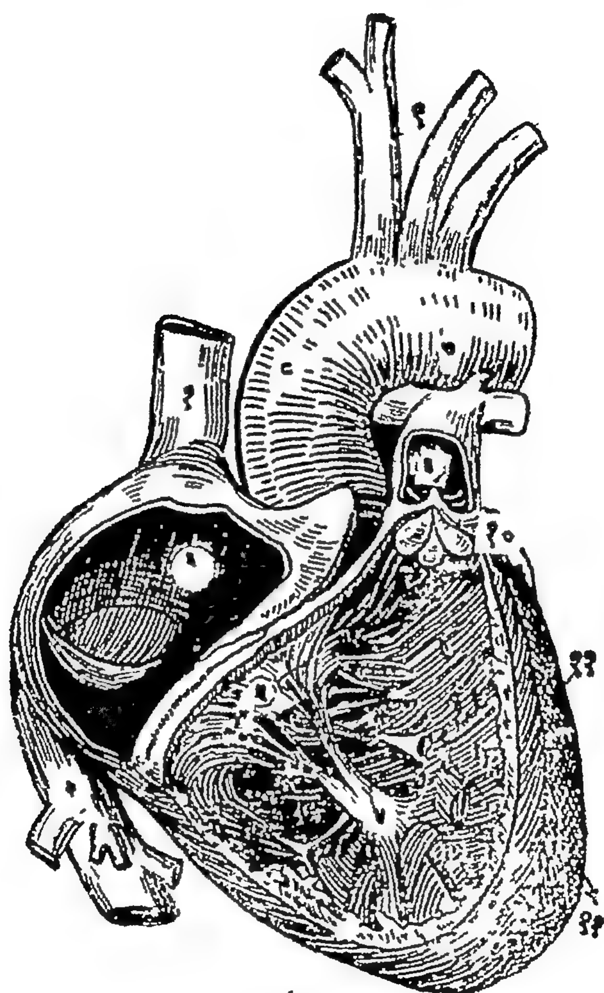
जब ख़ून सारे शरीर का चक्कर लगा कर तन्तुओं के विकारों के साथ लौटता है तब वह पहले दाहिने ग्राहक कोष्ठ में आता है। इस कोष्ठ में ख़ून के आने के दो रास्ते हैं। यह बताया जा चुका है कि लौटने वाले अशुद्ध ख़ून की नलियों को शिराएँ कहते हैं। दाहिने ग्राहक कोष्ठ में दो शिराओं से ख़ून भरते हैं। एक शिरा ऊपर की तरफ और दूसरी नीचे की तरफ से आता है। ऊपर वाली ऊपरी बड़ी शिरा (ऊर्ध्व महाशिरा, superior vena cava), सिर, ऊपर के अवयव (दोनों भुजाएं) और छाती की तरफ से

विकार-युक्त ख़ून को इकट्ठा करके ले आती हैं। नीचे वाली निचली बड़ी शिरा (निम्न महा शिरा, inferior vena cava) बाक़ी अंगों से, जैसे उदर और टाँगों के हिस्सों से, मैले, विकार से भरे, ख़ून को इकट्ठा कर लाती है।

जब इन दो शिराओं से आकर विकार-युक्त ख़ून दाहिने ग्राहक कोष्ठ में इकट्ठा हो जाता है तब वह सिकुड़ कर इस ख़ून को दाहिने क्षेपक कोष्ठ में डाल देता है। इसका कारण यह है कि ख़ून को फेफड़ों में पहुँचकर फिर से शुद्ध हो जाना चाहिए और उसे फेफड़ों में भेजने का काम दाहिना क्षेपक कोष्ठ ही कर सकता है। इस काम के लिए दाहिने क्षेपक कोष्ठ से एक नली, धमनी, निकलती है। यह हम देख चुके हैं कि ख़ून ले जाने वाली नली को धमनी कहते हैं (यद्यपि धमनी में शुद्ध ख़ून बहता है, तो भी इस नली को भी जो ख़ून को शुद्ध करने के लिए उसे फेफड़ों में ले जाती है धमनी ही कहते हैं।) दाहिने क्षेपक कोष्ठ से निकलने वाली इस धमनी को फेफड़ों वाली धमनी (फुफ्फुसीय धमनी, pulmonary artery) कहते हैं। इसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं, जिनमें से एक दाहिने फेफड़े को और दूसरी बायें फेफड़े को जाती है। जहाँ से यह फेफड़ों वाली धमनी शुरू होती है वहाँ उसके भीतर तीन आधे चन्द्रमा के आकार के किवाड़ों से बना एक कपाट (semilunar valves) लगा रहता है, जिससे कोष्ठ से धमनी में जाने वाला ख़ून उलटा नहीं लौट सकता।

दाहिने क्षेपक कोष्ठ के सिकुड़ने से ख़ून फेफड़ों वाली धमनियों से होकर फेफड़ों में पहुँचता है।

जब फेफड़ों में आक्सीजन के सम्पर्क से ख़ून फिर शुद्ध और लाल हो जाता है तब वह बायें ग्राहक कोष्ठ में आता है। इस कोष्ठ में शुद्ध ख़ून के आने के लिए चार नलियाँ लगी हुई हैं। इन्हें



१—ऊपरी बड़ी शिरा; २—निचली बड़ी शिरा (मोटी नली शिरा है): ३—दाहिना ग्राहक कोष्ठ, ४—प्रेरक कोष्ठ पर एक पेशी जिस से ऊपर के कपाट का बंधन लगा है; ५—कपाट का प्रबन्ध, ६—फेफड़ों वाली धमनी; ७, ८ ९—बड़ी धमनी और उसकी शाखाएँ; १०—बायाँ ग्राहक कोष्ठ; ११—बायाँ प्रेरक कोष्ठ।

दिल का कुछ भीतरी भाग। चित्र नं० ४५

चाहिए कि फेफड़ों वाली धमनी (जो दाहिने क्षेपक कोष्ठ से निकलती है) को छोड़कर शरीर में जितनी धमनियाँ हैं वे सब इसी बड़ी धमनी से निकलती हैं।

बायें क्षेपक कोष्ठ के सिकुड़ने से खून बड़ी धमनी मे आता है और उसकी शाखा प्रशाखाओं से होता हुआ शरीर क अग अग मे पहुँचता है।

ख़ून ले जाने वाली धमनी—

यह बताया जा चुका है कि बायें क्षेपक कोष्ठ से बड़ी धमनी (aorta) निकलती है। यह धमनी पहले ऊपर को जाती है। लगभग दो इच ऊपर उठने के बाद यह बाई ओर को मेहराब की तरह मुड जाती है और फिर नीचे को जाती है। नीचे जाते समय यह धमनी दिल के पीछे रहती है। छाती के निचले हिस्से मे पहुँचकर यह छाती और उदर के बीच वाला पेशी (महाप्राचीरा) के एक छेद से निकलकर उदर में आ जाती है। उदर में कमर के चौथे मोहरे के सामने यह धमनी दो बड़ी शाखाओं में बँटकर दोनों टाँगों में चली जाती है।

आरम्भ में ही बड़ी धमनी के ऊपर उठने वाले भाग से दो शाखाएँ निकलती हैं, जो दिल को खून पहुँचाती हैं। खून को अपने अन्दर से पप करके सारे शरीर मे भेजना दिल का काम है, पर यह न भूलना चाहिए कि और अगो की तरह दिल को भी पोषक पदार्थों की जरूरत रहती है। ये पोषक पदार्थ इन्हीं दिलवाली धमनियो से आये हुए ख़ून से दिल को मिलते हैं।

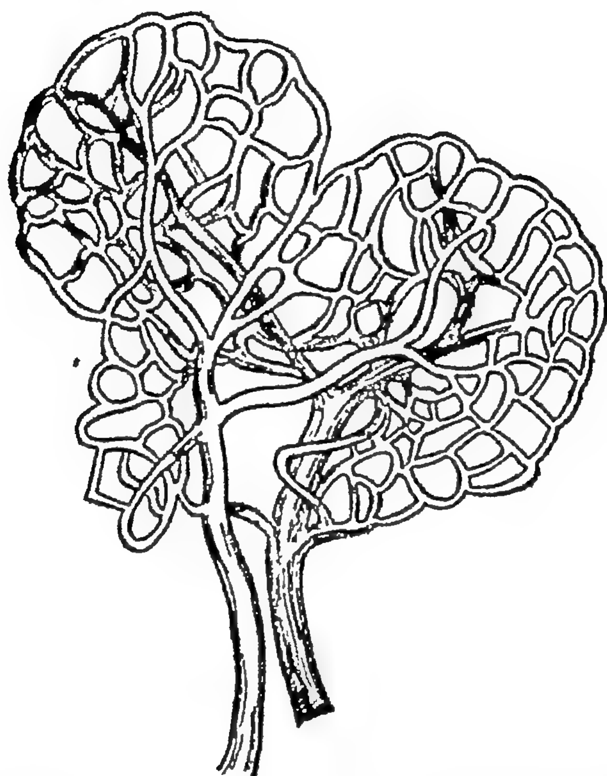
बड़ी धमनी के मुड़े हुए मेहराबदार हिस्से से तीन बड़ी बड़ी शाखाएं निकलती हैं। इनमे से पहला सबसे बड़ी होती है। थोड़ी दूर ऊपर को जाकर यह छाती के भीतर ही दो शाखाओं मे बँट जाती है। इनमें से एक शाखा ऊपर के दाहिने अवयव (दाहिना

कंधा, भुजा, हाथ) को खून पहुँचाती है और दूसरी गर्दन के दाहिने हिस्से में चली जाती है और गर्दन और सिर के दाहिने हिस्से को ख़ून पहुँचाती है। यह हुई मेहराब से निकली पहली बड़ी शाखा की बात। मेहराब से निकली दूसरी शाखा से गर्दन और सिर के बायें हिस्से को खून पहुँचता है और तीसरी शाखा से ऊपर के बायें अवयव (बायाँ कधा, भुजा, हाथ) को ख़ून मिलता है।

ऊपर कहा गया है कि अपने मेहराबदार हिस्से के बाद धमनी नीचे को उतरती है। नीचे जाने वाले हिस्से से भी बहुत सी शाखाएँ निकलती हैं। छाती में ये शाखाएँ फेफड़ों, भोजन की नली, हवा की नली इत्यादि अगों को ख़ून देती हैं। इन शाखाओं के अलावा कुछ शाखाएँ ऐसी हैं, जो पसलियों के बीच में पहुँचकर छाती की दीवारों को पोषक पदार्थ पहुँचाती हैं। जब बड़ी धमनी के नीचे का हिस्सा उदर में पहुँचता है तो उससे कई शाखाएँ फूट कर आमाशय, जिगर, प्लीहा, आँत गुर्दा आदि उदर के अगों को ख़ून से सींचती हैं। फिर हरेक अंग की शाखा की दो शाखाएँ हो जाती हैं, जिनमें से एक वस्तिगह्वर में जाती है और उसके अन्दर के अगों को खून पहुँचाती है। दूसरी शाखा बड़ी होती है, जो नीचे जाँघ में उतर कर नीचे के अवयवों को खून देती है।

इस तरह हमने बड़ी धमनी का रास्ता देख लिया और यह भी जान लिया कि उससे कई शाखाएं फूटी हैं। इन शाखाओं से भी कई छोटी-छोटी धमनियाँ निकलती हैं। सबसे छोटी धमनियाँ निरी आँखों से नहीं देखी जा सकतीं। उनको देखने के लिए सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र की जरूरत पड़ती है। इन बहुत पतली धमनियो में बहता हुआ ख़ून इनसे भी पतली-पतली नालियों में पहुँचता है। इन्हीं नलियों को केशिकाएँ (capillaries) कहते हैं। जब तक

खून केशिकाओं में नहीं आ जाता तब तक वह किसी अंग को पोषक पदार्थ नहीं दे सकता और न उनसे विकार ही ले सकता है।



केशिकाओं का जाल। सफेद दिखने वाली मोटी नली और केशिकाएँ शुद्ध खून से भरी हैं। फिर इन्हीं केशिकाओं के मिलने से शिराएँ बनती हैं, जो ज़रा काली दिखती हैं। चित्र नं० ४६

केशिकाओं की दीवारों में मांस नहीं होता। वे सेलों की एक तह से ही बनी होती हैं। कुछ केशिकाएँ तो इतनी पतली और कम चौड़ी होती हैं कि उनके भीतर सिर्फ एक ही रक्त कण आ-जा

सकता है। केशिकाएँ अग अग मे जाल की तरह फैली हुई हैं, और प्रबध ऐसा अच्छा है कि केशिकाओं की दीवारें या तो अगों के सेलों के पास ही रहती हैं या उनसे बिल्कुल मिली रहती हैं। इससे फल यह होता है कि केशिकाओ में बहते हुए ख़ून का कुछ हिस्सा, जिसे रक्तवारि या लसीका कह सकते हैं, उनकी पतली दीवारों से छनकर बाहर निकल जाता है और अगो के सेलों में मिलता है—तभी ये सेले खून के उस हिस्से (लसीका) से अपनी खुराक (पोषक पदार्थ लेते हैं। खुराक के अलावा ये सेलें केशिकाओं के खून से आक्सीजन भी लेते हैं। साथ ही सेलों के अन्दर की कर्बन डायआक्साइड गैस, जो हर समय बनती रहती है, खून में मिल जाती है। इसके मिलने से केशिकाओं के अन्दर का खून मैला हो जाता है।

शिराएँ—

यह हम जानते हैं कि दिल से ख़ून बड़ी धमनी और उसकी शाखाओं में बहकर अंग-अग में पहुँचता है। हम यह भी जानते हैं कि शिराओं में बहकर खून दिल को लौटाता है। अब सवाल यह है कि ये शिराएँ कहाँ हैं। इसको समझने के लिए यह जानना होगा कि अगो के सेलों को ख़ून द्वारा पोषक पदार्थ देने के बाद केशिकाएँ एक दूसरे से जुडने लगती हैं, जिससे कुछ मोटी और फिर उनसे भी ज्यादा मोटी नलियाँ बनती हैं। यही शिराएँ हैं। इनके अन्दर जो ख़ून बहता है उसमें आक्सीजन की कमी और कार्बन डाय आक्साइड गैस की ज्यादती रहती है। यह खून छोटी शिराओ से बडा शिराओं में बहता हुआ दिल के दाहिने ग्राहक कोष्ठ में पहुँचता है और वहाँ से दाहिन प्रेषक कोष्ठ में उतर कर फेफड़ों में शुद्ध हाने के लिए भेजा जाता है।

धमनी और शिराओं के सबंध में जानने योग्य एक बात यह है कि धमनी पहले बड़ी रहती है और आगे चलकर उससे छोटी शाखाएँ निकलती हैं, पर शिराएँ पहले छोटी रहती हैं और आगे चलकर कई छोटी शिराओ के मिलने से बडी शिराएँ बनती है। धमनी और उसकी शाखाओं से शुद्ध ख़ून अगों में पहुँचता है पर शिराओ से वही ख़ून अशुद्ध होकर उन्हीं अंगों से वापस आता है। धमनी की बहुत पतली शाखाओ और बहुत पतली-पतली शिराओं के बीच में जो बहुत ही पतली नलियो का जाल है वह केशिकाओं का जाल है। केशिकाओ की नलियाँ धमनी और शिरा के बीच की चीज़ें हैं।

ऊपर कहा गया है कि छोटी छोटी शिराओ के मिलने से बड़ी बडी शिराएं बनती हैं और इसी तरह अग अग से विकार-युक्त ख़ून इकट्ठा होता जाता है और दो बडी शिराओं से होकर दाहिने ग्राहक कोष्ठ में पहुँचता है। इसका सिलसिला इस तरह है। नीचे के अवयव (टाँगों) की शिरा उदर में आकर अपनी तरफ़ के बस्तिगह्वर की शिरा से मिलती है। इस तरह दोनों टाँगो की शिराओ और बस्तिगह्वर की शिराओ के मिलने से दो बडी शिराएँ बन जाती हैं। (ये बड़ी धमनी की अन्तिम शाखाओं के पास रहती हैं, चित्र देखो।) ये दोनों शिराएँ जल्दी ही मिल जाती हैं, और इनके मिलने से एक बड़ी शिरा,निचली बड़ी शिरा (जिसका नाम पहले आ चुका है), बनती है। उदर के अगों की छोटी छोटी शिराएँ इसमें आ मिलती हैं। इसी से ज्यो ज्यों यह शिरा ऊपर को जाती है ज्यादा मोटी होती जाती है। फिर यह जिगर के पीछे होकर महाप्राचीरा के एक छेद से छाती में चली जाती है और तुरन्त ही दाहिने ग्राहक कोष्ठ के नीचे के हिस्से में जा खुलती है। इसका मतलब यह है कि निचली बडी शिरा टाँग और उदर के अग से विकार-युक्त ख़ून को लाकर दिल में पहुँचा देती है। इसी

तरह सिर, गर्दन, दोनों भुजाएँ और छाती के अंगों से आने वाली शिराओं के मेल से एक बड़ी शिरा बनती है, जिसे **ऊपरी बड़ी शिरा** (जिसका नाम पहले आ चुका है) कहते हैं। यह शिरा छाती में रहती है और दाहिने ग्राहक कोष्ट के ऊपरी हिस्से में जा खुलती है। इसका मतलब भी यही हुआ कि ऊपरी बड़ी शिरा ऊपर के अंगों से विकार-युक्त ख़ून को इकट्ठा कर दिल में पहुँचा देती है। इस तरह जितना भी शुद्ध खून दिल के बायें क्षेपक कोष्ठ से निकल कर बड़ी धमनी और उसकी शाखाओं से शरीर के विविध अंगों में पहुँचता है वह अशुद्ध होने के बाद ऊपरी और निचली महाशिराओं के रास्ते दिल के दाहिने ग्राहक कोष्ठ में लौट आता है।

ख़ून के दिल से निकल कर सारे शरीर में चक्कर लगाने के बाद फिर दिल में ही लौट आने को **ख़ून का दौरान** कहते हैं। अन्दाज़ है कि एक चक्कर पूरा करने में ख़ून को लगभग १५ सेकंड लगते हैं।

*　　　*　　　*　　　*

ख़ून के इस चक्कर को संक्षेप में और जल्दी से समझने के लिए यह जानना चाहिए कि ख़ून

(१) बायें क्षेपक कोष्ठ से निकल कर बड़ी धमनी और उसकी शाखाओं में जाता है।

(२) बड़ी धमनी की शाखा प्रशाखाओं से सारे शरीर की केशिकाओं में पहुँचता है।

(३) केशिकाओं से छोटी शिराओं में आता है।

(४) फिर छोटी शिराओं से दो बड़ी शिराओं में आता है।

(५) इन दो बड़ी शिराओं से दाहिने ग्राहक कोष्ठ में पहुँचता है।
(६) दाहिने ग्राहक कोष्ठ से दाहिने क्षेपक कोष्ठ में उतरता है।
(७) दाहिने क्षेपक कोष्ठ से फेफड़ों वाली धमनी और उसकी शाखाओं में जाता है।
(८) फेफड़ों वाली धमनी की शाखाओं से फेफड़ो की केशिकाओं में पहुँचता है।
(९) फेफड़ों की केशिकाओं से चार फेफड़ों वाली शिराओ में जाता है।
(१०) फेफड़ों वाली शिराओं से बायें ग्राहक कोष्ठ में पहुँचता है।
(११) बायें ग्राहक कोष्ठ से बायें क्षेपक कोष्ठ में उतरता है, और वहाँ से फिर बड़ी धमनी-द्वारा शरीर में भेज दिया जाता है।

कोष्ठों का सिकुड़ना और फैलना—

दिल से सारे शरीर मे ख़ून भेजे जाने के सम्बन्ध में यह समझना ज़रूरी है कि कोष्ठों के सिकुड़ने से ही ख़ून आगे को जाता है। जब एक कोष्ठ सिकुड़ कर ख़ून को आगे बढ़ा देता है तब वह फिर से फैलने लगता है। फैलते समय वह फिर ख़ून से भर जाता है और तब फिर उसे आगे ढकेलने के लिए सिकुड़ता है। इस तरह कोष्ठों के सिकुड़ने और फैलने की कार्रवाई जीवन भर जारी रहती है। दोनों ग्राहक कोष्ठ एक साथ ही ख़ून से भरते हैं और एक साथ ही सिकुड़ कर ख़ून को नीचे उतारते हैं। इसी तरह दोनों क्षेपक कोष्ठ भी एक साथ ही ख़ून से भरते और एक साथ ही सिकुड़ कर ख़ून को आगे बढ़ाते हैं। * पहले दोनों ग्राहक कोष्ठ

---

* कभी कभी दिल की बीमारी की हालत में इस क्रिया में गड़बड़ी हो जाती है और एक कोष्ठ दूसरे से पहले सिकुड़ने लगता है।

सिकुड़ते हैं, फिर दोनो क्षेपक कोष्ठ। इसके बाद ये सभी हिस्से फैलते हैं, और तब दिल जरा सा आराम करता है और फिर उसके चारों खाने सिकुडते और फैलते हैं। एक बार के सिकुडने और फैलने में १।७२ मिनट के लगभग समय लगता है, जिसका मतलब हुआ कि दिल एक मिनट में ७२ बार अपने अन्दर खून भरता है और उतनी ही बार उसे आगे बढ़ाता है।

नाड़ी (नब्ज़)—

जब दिल सिकुडता है तो वह खून को बड़े जोर से धमनियों में ढकेलता है। ये लचीली धमनियाँ ख़ून को ग्रहण करते समय फैलती हैं और फिर उसको आगे बढाने के लिए सिकुडती हैं। धमनियो का फैलना और सिकुड़ना बडी धमनी के आरभ स्थान से ही शुरू हो जाता है और उसका सिलसिला एक लहर की तरह अंत तक चला जाता है। यह लहर एक के बाद दूसरी उठती रहती हैं। फैलाव की यह लहर (**नाड़ी, नब्ज़**, pulse) की धडकन के रूप में मालूम होती है। नाडी दोनों कलाइयो मे अगूठो के नीचे तो मालूम ही होती है, पर और हिस्सो में भी, जहाँ धमनी शरीर की ऊपरी खाल के पास किसी सख्त चीज के ऊपर से निकलती है, मालूम होती है।

नाड़ी का सबध धमनियों से ही है, शिराओ और केशिकाओं से नहीं। जब धमनियो में ख़ून बहता है तो वह झोंके के साथ आगे बढता है। यही झोंका नाड़ी की धडकन है पर जब ख़ून केशिकाओ में आता है तो झोका नही रहता। शिराओ में भी वह स्थिर होकर आगे को बहता जाता है। यही कारण है कि कटी धमनी से ख़ून झोंके से बाहर निकलता है पर एक कटी शिरा से वह स्थिरता के साथ बाहर आता है।

नाड़ी की धड़कन दिल की ही धड़कन है। जन्म के बाद

लगभग एक साल तक नाड़ी एक निमट में लगभग १२० बार धड़कती है। और तब धीरे धीरे उसकी संख्या जवानी तक ७०-७५ बार हो जाती है।

दिल की धड़कन पर स्नायुओं का प्रभाव—

दिल अपना काम आदमी की इच्छा से नहीं करता। वह स्नायु-संस्थान से संचालित होता है। स्नायुओं के प्रभाव इसीसे जाना जाता है कि जब कोई आवेश होता है तो दिल आप ही आप तेजी से धड़कने लगता है। इसी तरह कभी कभी धड़कन धीमी पड़ जाती है। दिल के इस प्रकार कभी तेजी से और कभी धीमी चाल से धड़कने का कारण भिन्न भिन्न स्नायुओं का प्रभाव है। स्नायु की बातें आगे बताई जायेंगी।

ख़ून के चक्कर लगाने के सबूत—

ख़ून सारे शरीर का दौरा करता है, यह बात सबसे पहले १७वीं सदी में विलियम हार्वे ने सिद्ध किया। जो सबूत (प्रमाण) अब प्राप्त हैं वे ये हैं :—

(१) धमनी के फटने पर ख़ून झोंके से निकलता है। यह झोंका दिल की धड़कन के कारण होता है।

(२) जहाँ जहाँ भी कपाट लगे हैं वे इसी ढंग से लगे हैं कि ख़ून एक ही दिशा में बहे, उल्टा न लौटे।

(३) किसी भी ख़ून की नली में अगर ज़हर पड़ जाय (जैसा कि साँप के डसने पर होता है) तो वह सारे शरीर में फैल जाता है।

(४) अगर किसी जीते आदमी के शरीर पर कहीं कोई धमनी ऊपर से बाँधी जाय तो वह दिल की तरफ़ फूल जाती है और ख़ून नहीं आने से दूसरी तरफ़ को ख़ाली हो

जाती है। धमनी के कटने पर दिल की तरफ़ दबाव डालने से ख़ून बंद हो जाता है।

इसी तरह शिरा की प्रतिक्रिया दिल की तरफ नहीं बल्कि दूसरी तरफ़ होती है।

अगर ख़ुर्दबीन से एक मेढक के जालीदार पैर को देखा जाय तो ख़ून धमनियों से बहता हुआ देखा जा सकता है।

ख़ून ले जाने वाली नलियों की बनावट—

धमनियों की दीवारें मोटी, मज़बूत और लचीली होती हैं और शिराओं की दीवारें पतली और कुछ कमज़ोर। लचीले तन्तुओं के अभाव से शिराएँ कट जाने पर चिपक जाती हैं पर धमनियाँ कट जाने पर भी ज्यों की त्यों गोल बनी रहती हैं।

बहुत सी शिराओं के भीतर जगह जगह पर कपाट लगा होता है। इन कपाटों के किवाड़ जेब की तरह या आधे चन्द्रमा के आकार के होते हैं। इसीसे यह होता है कि ख़ून उल्टा नहीं लौटता बल्कि दिल की ही ओर बहता जाता है। अगर बाँह को ज़ोर से दबाया जाय और दबाव हाथ की तरफ हो तो शिराओं में जहाँ जहाँ पर कपाट लगे हैं वहाँ के हिस्से कुछ फूल कर ऊपर को उठ जायँगे। इस फूलने से ही मालूम होता है कि उन स्थानों पर कपाट हैं, जो ख़ून को लौटने से रोकते हैं।

केशिकाएँ जाल की तरह फैली रहती हैं। उनकी दीवारें बहुत ही पतली, सिर्फ़ सेलों से ही बनी, होती हैं। इसीसे उनसे छन छन कर लसीका रस निकलता है और सेलों को पोषक पदार्थ देता है, और इसीसे ख़ून के अन्दर की आक्सीजन सेलों तक पहुँचती है और सेलों की कार्बन डाय आक्साइड गैस ख़ून में मिल जाती है।

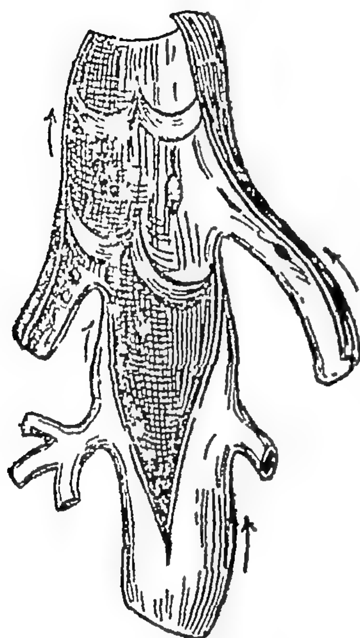
इन खून की नलियों पर भी स्नायुओं का असर पड़ता है। कभी कभी ऐसा होता है कि शरीर के किसी खास हिस्से में ज्यादा खून की जरूरत होती है और वहाँ धमनियों को ज्यादा खून पहुँचाने के लिए ज्यादा फैलना पड़ता है। जब पेट मे भोजन पचता रहता है तो पेट में ज्यादा खून की जरूरत होती है। इसी तरह शरीर के और हिस्से भी जब वे आराम न करके काम में लगे होते हैं तो ज्यादा खून खींचते हैं। ज्यादा खून पहुँचाने का काम खास स्नायुओ के सहारे होता है। इन स्नायुओं में यह शक्ति है कि वे खून की नलियों को आवश्यकतानुसार फैला सकते हैं या सकरा कर सकते हैं।

लसीका—

यह हम देख चुके हैं कि अगो के सेलो के पोषण खून से नहीं बल्कि केशिकाओं की दीवारों से छन छन कर निकले हुए खून के एक हिस्से से होता है, जिसे लसीका कहते हैं। यह याद रखना चाहिए कि सेल कभी भी सीधा-सादा खून के संपर्क में नहीं आते, वे लसीका के ही संपर्क में आते हैं, और उसी से पोषक पदार्थ पाते हैं। लसीका में वे पदार्थ घुले रहते हैं, जिनकी सेलो को जरूरत रहती है, जैसे शक्कर, प्रोटीन, चिकनाई, खनिज लवण इत्यादि। लसीका के बाहर आ जाने से सेलें उसमें तर रहते हैं और उससे अपनी खुराक लेते हैं। सेलों के विकार भी लसीका में घुल जाते हैं।

हर एक अंग मे खून की केशिकाओ के अलावा कुछ और केशिकाएँ भी हैं। इन्हें **लसीका केशिकाएँ** (lymphatic capillaries) कहते हैं। सेलों को खुराक देने और उनसे विकार ले लेने के बाद लसीका का बहुत सा भाग खून की केशिकाओ में लौट जाता है, पर उसका कुछ हिस्सा लसीका केशिकाओं में चला जाता है। इन केशिकाओं के परस्पर मिलने से **लसीका की पतली**

पतली नलियाँ बनती हैं। कई पतली **लसीका की नलियों** (lymphatic vessels) के आपस में मिलने से बड़ी बड़ी लसीका की नलियाँ बनती हैं। शरीर के सभी अंगो से इकट्ठा होकर लसीका दो नलियो में आ जाता है, जिनमे से एक बड़ी और दूसरी छोटी होती है। बड़ी लसीका की नली, जिसे छाती वाली लसीका नली (thoracic duct) कहते हैं, गर्दन के बायें हिस्से मे पहुँच कर गर्दन और कधा-भुजा की शिराओं के संगम में जा मिलती है। दूसरी नली गर्दन के दाहिने तरफ़ की शिरा में मिलती है। इस तरह लसीका ख़ून से ही निकलता है और सारे शरीर का लसीका इकट्ठा होकर दो नलियों के रास्ते ख़ून मे ही जा मिलता है।



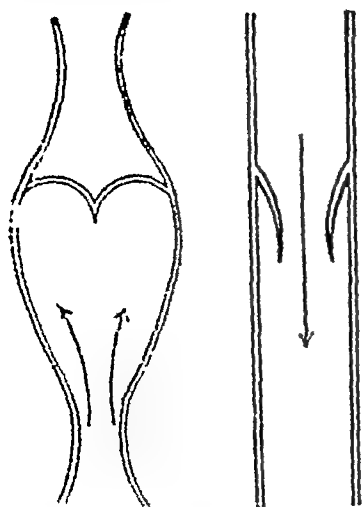
एक खुली शिरा। अन्दर आधे चन्द्रमा के आकार का कपाट है।

चित्र न० ४८

यह हम पढ़ चुके हैं कि आँतो से लसीका की नलियाँ लेक्टील्स (lacteals) कहलाती हैं। इसमें चिकनई का अश भरा रहता है और हम देख चुके हैं कि भोजन से जो चिकनई मिलती है वह लसीका केशिकाओ मे होकर ही शरीर में पहुँचती हैं।

लसीका की नलियाँ बहुत अशो में शिराओं की तरह होती हैं। लेकिन इन नलियों की दीवारे और भी पतली होती हैं। इसीसे

खाली रहने पर ये नलियाँ पिचकी रहती हैं और ढूँढने पर जल्दी नहीं मिलतीं।



कपाटों की क्रिया। एक चित्र में कपाट खुला है, दूसरे में बंद।
चित्र नं० ४६

लसीका की नलियो के संबंध में यह भी जानना चाहिए कि अक्सर वे गिल्टियों से होकर निकलती हैं। इसका ढंग यह है कि एक नली गिल्टी के एक सिरे या किनारे से जुड़ जाती है और दूसरे किनारे या सिरे से एक दूसरी नली निकलती है। लसीका पहली नली से गिल्टी में पहुँती है और दूसरी नली से फिर बाहर निकलती है। बगल (काँख), जाँघ के गड्ढे और गर्दन आदि कई अंगों में ये गिल्टियाँ रहती हैं। ये **लसीका-गिल्टियाँ** (lymphatic glands) कहलाती हैं।

इन गिल्टियों का काम है लसीका के अन्दर के विकारों को अपने में रख लेना और फिर उनको नष्ट कर देना, जिससे कि रोग पैदा न हो। जख्म या फोड़ा होने की हालत में अक्सर ये गिल्टियाँ फूल जाती हैं, जिसका मतलब यह है कि वे रोग के कीड़ों को अपने अन्दर रख लेती हैं और आगे बढ़ने नहीं देतीं। इन गिल्टियों में एक तरह के सफेद रक्तकण (white corpuscles) भी बनते हैं, जो खून में पहुँच जाते हैं।

खून के चक्कर लगाने का जरूरी काम शरीर में आप ही आप होता रहता है। मामूली तनदुरुस्ती की हालतो में उसके लिए आदमी को ज़रा भी ध्यान नहीं देना पड़ता। फिर जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया है, मनुष्य का कर्तव्य है अच्छे भोजन से और खुली हवा में रह कर ख़ून को अच्छी हालत में रखना।

साँस लेना और निकालना

साँस की ज़रूरत—

खून और उसके दौरान संबंधी विषयो को जान कर यह बात बहुत कुछ समझ में आ गई होगी कि साँस लेना और फेंकना क्यों जरूरी है। संक्षेप में, अन्दर जाने वाली साँस का काम है फेफड़ों में साफ़ हवा पहुँचाना। उससे जो आक्सीजन मिलती है वह ख़ून को शुद्ध करती है। इसी तरह बाहर आने वाली साँस का काम है ख़ून के अन्दर के विकार, कार्बन डाय आक्साइड, को बाहर निकाल फेंकना। ख़ून शरीर के लिए जरूरी है और खून की सफ़ाई और अच्छाई बहुत कुछ साँस लेने और फेंकने पर निर्भर है।

असल में विकारो को बाहर निकालने के कई प्रबंध हैं और ये प्रबंध भिन्न भिन्न अगों से होते हैं। जब ख़ून चक्कर लगाता हुआ उन अगों मे पहुँचता है तो वे खून के अन्दर से विकारों को ले लेते हैं और उन्हें या तो पेशाब या पसीने के साथ शरीर के बाहर निकाल देते हैं। साँस के साथ विकार निकालने का प्रबन्ध फेफड़ों (फुफ्फुसों, lungs) के सहारे होता है, और यह तभी होता है जब कि ख़ून फेफड़ों में पहुँचता है। इसी तरह पेशाब के साथ विकार निकालने का काम गुर्दों (वृक्क, kidneys) से और पसीना के साथ विकार निकालने का काम खाल (त्वचा, skin) के सहारे होता है।

शरीर के अन्दर जितनी भी हरकतें होती हैं उन सबो के कारण सेल टूटते-फूटते हैं और तन्तुओं और सेलों में कई करह की

रासायनिक क्रियाएँ होती हैं। इन से बहुत से पदार्थ शरीर के अन्दर बनते हैं, जो हानिकारक होते हैं और जिनका शरीर के बाहर निकल जाना ही अच्छा है। कार्बन डाय आक्साइड एक ऐसा पदार्थ है, जो शरीर में बहुतायत से बनता है। बात यह है कि तन्तुओं में कार्बन की मात्रा रहती है और जब हरकतों के कारण तन्तुओं के सेल टूटते-फूटते हैं तो कार्बन डाय आक्साइड तैयार होती है। इसके बाहर निकालने का प्रबंध हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं। जब केशिकाओं की पतली दीवारों से छन छन कर ख़ून सेलों से मिलता है तो ख़ून की आक्सीजन सेलों को मिल जाती है और सेलों की कार्बन डाय आक्साइड ख़ून में पहुँच जाती है, जिससे ख़ून मैला स्याही लिये हुए हो जाता है। सारे शरीर का चक्कर लगा कर और इस विकार के कारण मैला होकर ख़ून दिल के दाहिने ग्राहक कोष्ठ में आता है। वहाँ से दाहिने क्षेपक कोष्ठ में उतर कर वह साफ होने के लिए फेफड़ों में जाता है। फेफड़ों में ही आक्सीजन भरी साफ़ हवा आती है और उसके संपर्क से ख़ून फिर शुद्ध हो जाता है। हवा के साथ आई हुई आक्सीजन ख़ून को मिल जाती है और ख़ून के साथ आई हुई कार्बन डाय आक्साइड बाहर जाने वाली हवा के साथ शरीर के बाहर निकल जाती है।

साँस की क्रिया इसी लिए होती रहती है कि शरीर में बराबर ही आक्सीजन पहुँचा करे और कार्बन डाय आक्साइड उसके बाहर निकल जाया करे।

हवा—

साँस की क्रिया की ज़रूरी सामग्री हवा है। वह अंदर जाती और बाहर आती है। इस लिए हवा के संबंध में कुछ आवश्यक बातों को जानना चाहिए। हवा कई गैसों के सम्मिश्रण से बनती

है। शुद्ध हवा में लगभग ७९ फी सदी नाइट्रोजन और २१ फी सदी आक्सीजन रहती हैं। इनके अलावा उसमें कुछ पानी की भाप (water vapour) और नाम-मात्र को कार्बन डाय आक्सा-इड भी रहती है। यह तो हुई शुद्ध हवा की बात, पर जब फेफड़ों में पहुँचे हुए खून को आक्सीजन देकर और उससे विकार लेकर हवा बाहर आती है तो उस में बहुत से परिवर्त्तन हो जाते हैं। इस तरह साँस ली और निकाली हवा में बहुत भेद रहता है। बाहर निकाली हवा में आक्सीजन की मात्रा सिर्फ १६-१७ फी सदी रह जाती है और कार्बन डाय आक्साइड की मात्रा लगभग ४ फी सदी बढ़ जाती है। नीचे के लेखे से साँस ली और बाहर निकली हवा की बनावटों का अन्तर मालूम हो जायगा।

	साँस ली हवा, फी सदी	बाहर निकाली हवा, फी सदी
नाइट्रोजन	७९-००	७९-००
आक्साजन	२०-९६	१६-५०
कार्बन डाय आक्साइड	•४	४-५०
पानी की भाप	थोड़ी सी	ज्यादा

बाहर निकाली हवा साँस ली हवा से ज्यादा गरम होती है। उसकी गर्मी लगभग वही होती है जो शरीर की होती है और उसमें शरीर से निकले हुए कई तरह के बहुत छोटे छोटे हानिकारक पदार्थ होते हैं।

बाहर निकाली हवा में कार्बन डाय आक्साइड का पता एक प्रयोग से चल सकता है। एक प्याले में थोड़ा सा चूने का साफ पानी लो और एक शीशे की लंबी नली (ट्यूब) के एक सिरे को उसमें डुबोकर दूसरे सिरे से फूँको। पानी धीरे धीरे दूध के

रंग का हो जायगा। इस परिवर्तन का कारण है साँस की कार्बन-डाय आक्साइड और चूने का संयोग, जिससे सफ़ेद खड़िया (चाक) बनती है।

बाहर निकाली हवा में पानी की भाप भी रहती है। इसका पता किसी शीशे या स्लेट के टुकड़े पर साँस निकालने से चलेगा। उसके ऊपर भी भाप सी जम जाती है। फिर ऐसी हवा गरम होती है, यह तो इसी से स्पष्ट है कि अक्सर जाड़ों में हाथों को गरम करने के लिए हम उन पर साँस फेंकते और उनको मलते हैं।

साँस के अवयव—

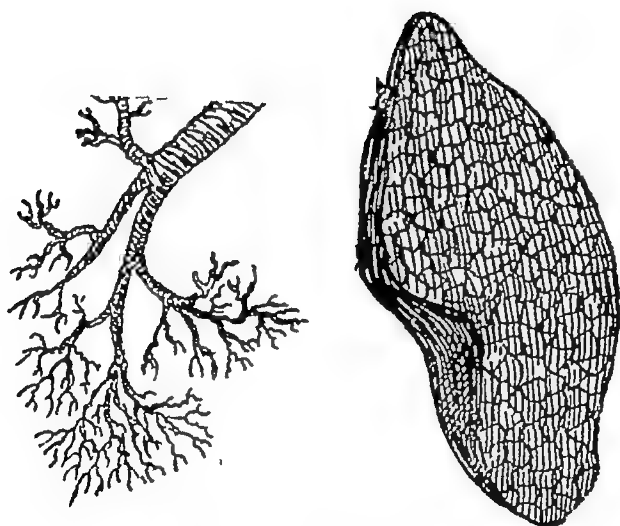
नाक के रास्ते चलकर हवा फेफड़ों मे पहुँचती है। हवा के जाने और आने के रास्ते को **साँस का रास्ता (श्वास मार्ग)** कहते हैं। इसके पाँच हिस्से हैं :—

(१) **नाक के सूराख़ या नथने** (nostrils)। हवा इन्हीं सूराख़ों से अन्दर घुसती है। इस संबध में यह याद रखना चाहिए के साँस खींचने का अवयव नाक है न कि मुँह। मुँह से साँस लेना ठीक नहीं।

(२) **गला या कंठ** (throat)। नाक से हवा गले में उतरती है।

(३) **स्वरयंत्र** (larynx)। गले से हवा स्वरयंत्र में आती है। स्वरयंत्र हवा की नली का ऊपरी हिस्सा है।

(४) **टेंटुआ** (trachea)। स्वरयंत्र के बाद ही टेंटुआ नामक हवा की नली है। हवा स्वरयंत्र से टेंटुआ में जाती है।



स्वरयन्त्र, टेंटुआ और फेफड़े। सब से ऊपर स्वरयन्त्र है। उसके नीचे टेंटुआ, जो दो नलियों में बट कर दोनों फेफड़ों में आ गया है। एक फेफड़े के ऊपर झिल्लीदार खोल है। दूसरा यों ही दिखाया गया है। इसमें कई छोटी छोटी सांस की नलियाँ दीखती हैं। चित्र नं० ५०

- (५) हवा की नलियाँ (वायु प्रणालियाँ, bronchi)—

टेंटुआ की लम्बाई लगभग ४½ इंच होती है। इसके

बाद इसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं। ये ही फेफडो में हवा ले जाती है। टेंटुए से हवा इन नलियों मे आती है। एक नली दाहिने फेफड़े में जाती है और दूसरी बायें मे।

साँस लेने और फेंकने के अवयवो में फेफड़े बहुत जरूरी हैं। पर ये ऊपर बताये गये अंग कम जरूरी नहीं हैं। सबसे पहली बात यह है कि हवा नथनों से होकर अन्दर जाती है। इससे यह होता है कि नाक की झिल्ली के संपर्क में आकर हवा गरम हो जाती है। फिर नाक के बालों से छन कर हवा के अन्दर के धूल के जर्रे बाहर ही रह जाते हैं। इन्हीं दो बातो के कारण यह जरूरी है कि साँस नाक से ली जाय न कि मुँह से। मुँह खाने के लिए है न कि साँस लेने के लिए। मुँह में दाँत इत्यादि खाने-चबाने के प्रबध हैं और नाक में साँस लेने के प्रबध अलग हैं।

यह ऊपर बताया गया है कि हवा नथनों से होकर गले में जाती है और गले से स्वरयन्त्र और टेंटुए में। अगर हम गर्दन में सामने की तरफ़ ठीक बीच में टटोलें तो एक कड़ी और लम्बी चीज़ मालूम होती है। जब हम कुछ निगलते हैं तो यह ऊपर उठती और फिर नीचे को गिरती हुई दिखाई देती है। यही स्वरयंत्र और टेंटुआ की नली है। ऊपर के मोटे और चौड़े हिस्से को स्वरयंत्र (larynx) कहते हैं और नीचे के हिस्से को टेंटुआ (trachea)। टेंटुआ छाती की हड्डी (sternum) के पीछे होकर छाती के भीतर जाता है। इसकी लंबाई लगभग ४½ इंच और चौड़ाई-गोलाई १ इंच से कुछ कम होती है। यह नली बिल्कुल गोली नहीं होती। इसका अगला हिस्सा तो गोल जरूर होता है पर पीछे का हिस्सा, जो भोजन की नली से मिला रहता है, सपाट होता है।

टेंटुए की दीवार कारटिलेजो से बनी होती हैं। कारटिलेज के छल्ले एक दूसरे के ऊपर रखे रहते हैं। पीछे की ओर ये छल्ले आपस में जुड़े नहीं होते क्योंकि, जैसा कि ऊपर बताया गया है, टेंटुए के पीछे का हिस्सा चपटा होता है। छल्लो की संख्या १६ से २० तक होती है। सब छल्ले आपस में सौत्रिक ततु से बॅधे रहते है। टेंटुए की भीतरी दीवार में श्लैष्मिक झिल्ली (mucous membrane) रहती है।

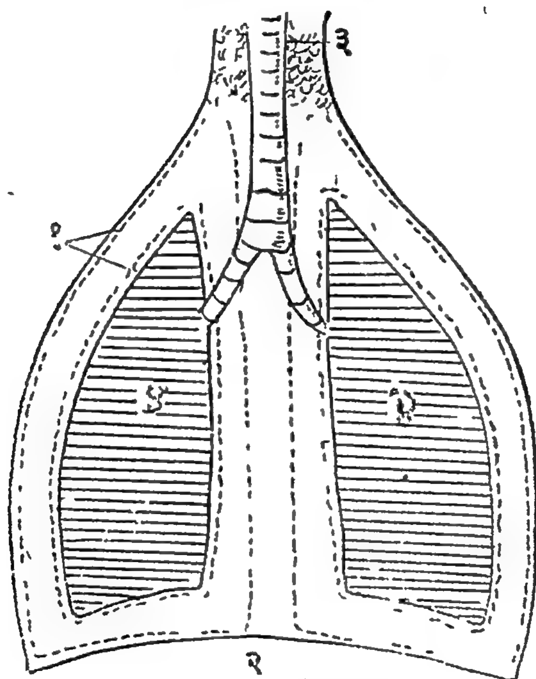
टेंटुआ दो नलियों, (**हवा की नलियों, वायु प्रणालियों**) मे बॅट जाता है। इन नलियो की दीवारें भी टेंटुए की दीवार की तरह कारटिलेज के छल्लो से बनी और सौत्रिक तन्तु से गठी होती हैं, और इनके भीतरी हिस्से में श्लैष्मिक झिल्ली रहती है। इस झिल्ली में भी बाल की तरह बहुत छोटे छोटे पदार्थ होते हैं, जो सीलिया (cilia) कहलाते हैं। ये बाल बहुत सावधान रहते हैं। अगर किसी तरह धूल हवा की नलियों में पहुँच जाती है तो ये उसको गले में लौटा देते हैं। वहाँ से यह खाँसी के सहारे बाहर फेंक दी जाती है।

दाहिनी हवा की नली दाहिने और बाईं हवा की नली बाये फेफड़े से सबध रखती है। फेफड़े में घुसते ही हरेक नली की कई शाखायें हो जाती हैं और फिर हरेक से और भी छोटी-छोटी शाखायें फूटती हैं। इन शाखाओं को **साँस की नलियाँ (श्वास प्रणालिकायें)** कहते हैं।

फेफड़े (फुप्फुस, lungs)—

फेफड़े दो हैं—दाहिना और बाँया। ये दोनों छाती के गड्ढे में दाहिनी और बाईं तरफ़ हैं। इनका रंग कुछ नीलापन लिये हुए भूरा होता है। (जन्म से पहले फेफड़ों का रग गहरा लाल और

तुरन्त पैदा हुए बच्चे के फेफड़ों का रंग गुलाबी लाल होता है।) दाहिना फेफड़ा बायें से कुछ चौड़ा और भारी होता है। फेफड़ा कुछ कुछ गावदुमी होता है—एक ओर पतला और कम चौड़ा पर दूसरी ओर मोटा और ज्यादा चौड़ा। इसका मोटा और चौड़ा



फेफड़ों का दूसरा दृश्य

क—ऊपरी झिल्ली (pleura), १—महाप्राचीरा पेशी; ३—टेंटुआ, ४—फेफड़े। चित्र न० ५१

हिस्सा, जिसे तली कहते हैं, नीचे को उदर की तरफ़ रहता है और उस पेशी पर रहता है, जिसे महाप्राचीरा (छाती और उदर के बीच की पेशी, वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी) कहते हैं। यह हम पढ़

चुके हैं कि इसी पेशी से छाती का हिस्सा उदर के हिस्से से अलग रहता है।

फेफड़े ऊपर से चिकने और चमकीले होते हैं और दबाने से स्पंज की तरह मालूम होते हैं। हरेक फेफड़े के ऊपर एक पतली झिल्ली का खोल (आवरण) चढ़ा रहता है। यह झिल्ली दोहरी होती है। इसकी एक तह फेफड़े की पीठ से बिल्कुल लगी रहती है और दूसरी तह छाती की भीतरी दीवार से। इसे **फेफड़े के ऊपर की झिल्ली (फुप्फुसावरण, परिफुप्फुसीय कला,** pleura) कहते हैं।

फेफड़ों में .खून का साफ़ होना—

ऊपर बताया जा चुका है कि फेफड़े में घुसते ही हर हवा की नली की कई छोटी छोटी शाखाएं हो जाती हैं। इनमें से हरेक को साँस की नली कहते हैं। हर साँस की नली से हवा के फूले-फूले थैले लगे रहते हैं, और हर थैले में छोटी छोटी हवा की कोठरियाँ होती हैं। इस तरह फेफड़ों में करोड़ों हवा की छोटी छोटी कोठरियाँ हैं और हर कोठरी का लगाव बाहर की हवा से रहता है। असंख्य नलियों में लगी हुई असंख्य हवा की कोठरियों के कारण जो हिस्सा हवा के संपर्क में आता है वह शरीर की सारी बाहरी सतह से पचपन गुना बड़ा है।

हवा के थैलों की दीवारें सेलों से बनी होती हैं। फेफड़े के हर हिस्से में खून और लसीका की बारीक नलियाँ, केशिकाएँ और स्नायु-सूत्र रहते हैं। (ये सभी आपस में सौत्रिक तंतु की सहायता से इकट्ठे रहते हैं।) केशिका के अन्दर के .खून और हवा की कोठरियों की हवा के बीच में सिर्फ़ केशिका और कोठरियों की पतली दीवारें हैं। ये इतनी पतली हैं कि इनमें से गैस आ जा सकती

हैं। केशिका के ख़ून मे हवा की कोठरी से आक्सीजन आ जाती है और केशिका के ख़ून से हवा की कोठरी में कार्बन डाय आक्साइड पहुँच जाती है। इस तरह फेफडो में गैसो की बदला-बदली हो जाती है। यह हम जानते हैं कि साँस ली हुई हवा मे आक्सीजन की मात्रा ज्यादा रहती है और चक्कर लगाकर वापस आये ख़ून में



एक हवा की नली के साथ बहुत से थैले। चित्र नं० ५२

कार्बन डाय आक्साइड का हिस्सा ज्यादा रहता है। बाहर से आई आक्सीजन ख़ून में पहुँच जाती है, जिससे केशिका के अन्दर का ख़ून साफ़ और लाल होकर फेफड़ों की शिराओ से बहता हुआ दिल के बायें ग्राहक कोष्ठ में पहुँचता है। उधर ख़ून से निकल कर हवा में पहुँची हुई कार्बन डाय आक्साइड निकलती साँस के साथ बाहर फेंक दी जाती है।

साँस की क्रिया—

फेफड़ो के अन्दर हवा का जाना और फिर बाहर निकलना **साँस की क्रिया** (respiration) है। इस तरह इसके दो हिस्से हैं:—

(१) हवा नथनों से होकर फेफड़ोंमें घुसती है, जिससे छाती फैलकर पहले से बड़ी हो जाती है। यह **साँस लेना** (उच्छ्वास, inspiration) है। (२) थोडी ही देर में हवा नथनों से बाहर निकलती है। छाती जो साँस लेते समय फैली थी, ज्यों की त्यों हो जाती है। साँस लेते समय फेफडे भी फैलते हैं। ये अब सिकुड जाते हैं। हवा के बाहर निकलने की क्रिया को **साँस फेंकना** (**प्रश्वास,** expiration) कहते हैं।

साँस की एक पूरी क्रिया में एक बार साँस लेना और एकबार साँस फेंकना दोनों होते हैं, अर्थात् दोनो क्रियाओं से एक पूरी साँस होती है। जवान आदमी १ मिनट में १६-१७ बार साँस लेता है। अब यह देखना है कि ये दोनों क्रियाएँ कैसे होती हैं।

साँस लेना—जब हम हवा भीतर खींचते हैं तो छाती की समाई ज्यादा हो जाती है। वह फैलती है। महाप्राचीरा पेशी, जो मेहराब की तरह है और जिसका बीच का हिस्सा ऊपर उठा रहता है, सिकुड़ती है और दबकर उदर की ओर चपटी हो जाती है। इधर पसलियाँ कई पेशियो के सिकुडने से ऊपर को उठती हैं। पसलियों के साथ साथ छाती की हड्डी (sternum) भी ऊपर को सामने की तरफ़ उठती है। इन सब हरकतों से छाती फैल जाती है और जैसे जैसे वह फैलती है हवा फ़ेफड़ों में घुसती जाती है। हवा के थैले फैल जाते हैं और फेफड़े भी फैलकर कुछ बड़े हो जाते हैं।

साँस फेंकना—हवा के थैलो और साथ ही साथ फेफडों के फैलने के थोड़ी देर बाद ही सिकुड़ी हुई पेशियाँ ज्यो की त्यों होने लगती हैं, हवा के थैले छोटे हो जाते हैं और उनमें से कुछ हवा निकल जाती है। छाती भी अपनी असली हालत पर आ जाती

कसरत और साँस—

यह हम जानते हैं कि कसरत करते समय या किसी भी परिश्रम के अवसर पर साँस की क्रिया तेज हो जाती है। ऐसा क्यों होता है? बात यह है कि बढ़ी हुई हरकत के कारण पेशियाँ ज्यादा आक्सीजन ग्रहण करती हैं और साथ ही उनमें ज्यादा कार्बन डाय आक्साइड पैदा होती है। इस तरह ख़ून में कार्बन डाय आक्साइड की ज्यादा मात्रा हो जाने से दिमाग में साँस संबंधी केन्द्र पर एक खास प्रभाव पड़ता है, जिससे खास खास पेशियों में गति होती है और साँस की क्रिया पहले से ज्यादा तेज हो जाती है। इस तेजी से दो बातें होती हैं—(१) ज्यादा आक्सीजन अन्दर आती है और खून साफ होता है, और (२) शिराओं के अन्दर लौटती ख़ून का दौरान बढ़ जाता है। सिर्फ ज्यादा हवा ही अन्दर नहीं बल्कि साँस लेते समय ज्यादा ख़ून फैले हुए फेफड़ों में खिंचता है और साँस फेंकते समय ज्यादा ख़ून फेफड़ों से निकलता है।

साँस पर स्नायु का प्रभाव—

हम ध्यान दें या नहीं, साँस की क्रिया बराबर जारी रहती है। महाप्राचीरा पेशी और पसलियों के बीच की पेशियों को स्नायुओं की प्रेरणा बराबर पहुँचती रहती हैं। इन स्नायुओं का संबंध दिमाग के एक ख़ास हिस्से में है और इस हिस्से का स्नायविक संबंध फेफड़ों से है।

गुर्दे और उनका काम

यह हमें मालूम हो गया है कि हर रोज की हरकतो से तन्तुओं के बनाने वाले सेल टूटते फूटते रहते हैं। साथ ही यह भी होता है कि नये नये सेल बनते रहते हैं, जो पुराने सेलों की जगह लेते हैं। पुराने सेलों के नष्ट होने और नये सेलों के बनने की कार्रवाई बराबर जारी रहती है।

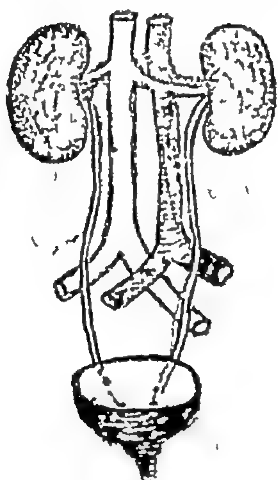
सेलो के नष्ट होने की क्रिया से कई तरह के हानिकारक पदार्थ बनते हैं। इन्हें धो-बहाकर लसीका शिराओ में होकर बहने वाले खून में पहुँचा देता है। इन हानिकारक पदार्थों का शरीर के बाहर निकल जाना आवश्यक है, नहीं तो शरीर में जहर फैल जाने के कारण मौत हो जाय। ये हानिकारक पदार्थ फेफड़े, गुर्दे और खाल के रास्ते निकल जाते हैं। खून के अन्दर की कार्बन डाय आक्साइड, गैस और पानी की भाप (जो हानिकारक पदार्थ हैं) किस तरह फेफडों के सहारे शरीर के बाहर निकाली जाती है, यह हम पढ़ चुके हैं। यहाँ यह बताया जायगा कि गुर्दों के सहारे किस तरह कुछ और हानिकर पदार्थ पेशाब के रूप में निकाले जाते हैं। खाल के सहारे जो सफाई की क्रिया होती है वह आगे बतलाई जायगी।

गुर्दे—

जिस अग में पेशाब बनता है उसे गुर्दा (वृक्क, kidney) कहते हैं। गुर्दे दो हैं—एक दाहिना, दूसरा बायाँ। ये रीढ़ की दाहिनी और बाई ओर सब से अखीर वाली पसलियों के सामने रहती हैं। इस तरह शरीर के अन्दर उनका स्थान काफी ऊँचाई पर है। उनका रग गहरा भूरा होता है और उनके चारों ओर, खासकर

उनके पीछे, चर्वी रहती है। हरेक गुर्दे के ऊपरी सिरे पर एक छोटी सी गिल्टी रहती है, जिसे उपवृक्क कहते हैं। उपवृक्क के संबंध में हम पहले पढ़ चुके हैं।

गुर्दे का आकार सेम या लोबिये के बीज की तरह होता है। उसकी लंबाई ४ इंच, चौड़ाई २½ इंच और मोटाई १ इंच होती है।



ऊपर में दो सेम के बीज की तरह वाले अंग दोनों गुर्दे हैं। सब से नीचे का अंग मसाना (मूत्राशय) है। दोनों गुर्दों से दो नलियाँ निकल कर सामने तक आती हैं। ये पेशाब की नलियाँ हैं। बीच की बड़ी सफेद नली धमनी है और बड़ी काली नली शिरा। चित्र न० ५५

सेम के बीज की ही तरह गुर्दे की दोनो तरफ की पीठे उभरी होती हैं और साथ ही उसका बाहरी किनारा भी उभरा होता है। उसका भीतरी किनारा जो रीढ़ की तरफ़ रहता है, बीच में दबा होता है। इसी दबे हुए हिस्से पर गुर्दे की धमनी उसके अन्दर प्रवेश करती है और यहीं पर उसकी शिरा बाहर आती है। (चित्र देखो।) यहीं से पेशाब की नली (मूत्र-प्रणाली, ureter)

निकलती है और नीचे जाकर मसाने (मूत्राशय, पेशाब की थैली, bladder) से जुड जाती है। मसाना (मूत्राशय) पेशियो की बनी एक थैली है। वह वस्तिगह्वर में रहती है। इसी थैली मे पेशाव गुर्दों से पेशाब की दोनो नलियो द्वारा आकर इकट्ठा हुआ करता है। जब यह थैली पेशाव से भर जाती है तो सिकुड़ती है और पेशाब पेशाब के रास्ते (मूत्र मार्ग, urethra)* बाहर निकलता है। यह पूछा जा सकता है कि पेशाब हर समय क्यों नहीं टपका करता। उत्तर है कि जहाँ से पेशाब का रास्ता शुरू होता है वहाँ मसाने की दीवार का माँस सिकुड कर छेद को बद किये रहता है। जब पेशाब करने की आवश्यकता होती है तो माँस ढीला पड़ जाता है और रास्ता खुल जाता है। तभी मसाने से निकल कर पेशाब पेशाब के रास्ते में आता है और बाहर निकल जाता है।

पेशाब में बहुत ज्यादा हिस्सा पानी और कुछ अश रासायनिक पदार्थों का रहता है। ये पदार्थ उस पानी में घुले रहते हैं। फिर इनमें कुछ हिस्सा यूरिया और यूरिक एसिड नामक दो नाइट्रोजेन-मिश्रित पदार्थों का होता है। तनदुरुस्ती की हालत में पेशाब मे न तो शकर रहती है न प्रोटीन, पर कुछ खास बीमारियों की हालत मे ये चीजें थोड़ी-बहुत मात्रा में पाई जाती हैं। पेशाव का रग तनदुरुस्ती की हालत मे गेहूँ की नली के रग से जरा गहरा होता है, पर बीमारी में इसका पीलापन बढ़ जाता है और कभी कभी कुछ ललाई भी आ जाती है।

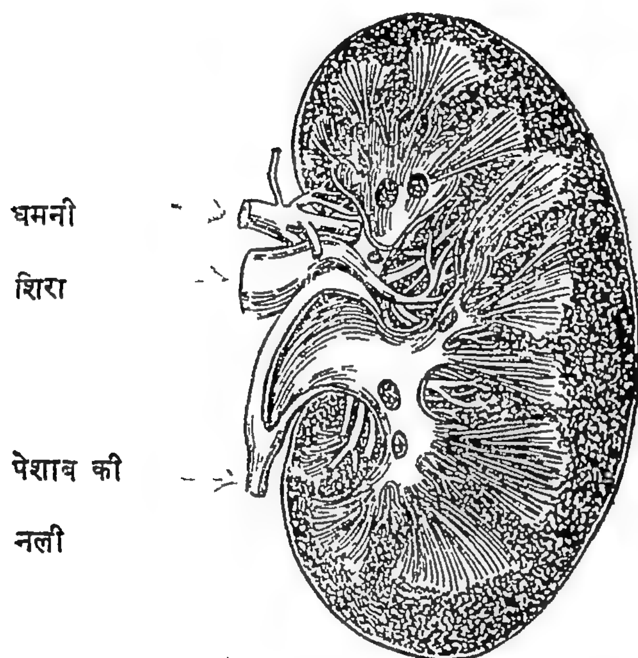
गुर्दे की बनावट—

अगर हम एक गुर्दे को लेकर उसे चाकू से, लंबा लबा एक किनारे से दूसरे तक काटें तो कटा हुए हिस्सा सब का सब

---

*पुरुष और स्त्री के मूत्रमार्ग अलग अलग होते हैं।

एक तरह का नहीं दिखाई देगा। उसका भीतरी (पीठ के पास का) हिस्सा ऊपरी बीच के हिस्से की अपेक्षा हलके रंग का होता है।

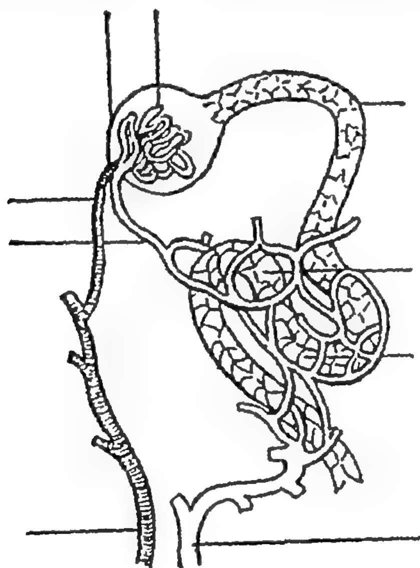


लम्बाई के रुख काटा हुआ एक गुर्दे का आधा हिस्सा। इसमें मीनारों की और पेशाब की नली के ऊपरी चौड़े हिस्से को देखो। चित्र नं० ५६

बीच का (अर्थात ऊपरी) भाग कई मीनार (pyramids) जैसे भागों में बटा रहता है। इन मीनारों की चोटियाँ (चित्र देखो) पेशाब की नली की तरफ रहती हैं और उनकी नलियाँ नीचे गुर्दे की पीठ की तरफ। इन मीनारों की चोटियों में बहुत से छोटे-छोटे छेद होते हैं, जो गुर्दे की बड़ी बडी नलियों के मुँह हैं।

सच पूछा जाय तो गुर्दा बहुत सी पतली पतली नलियो का समूह है। ये नलियाँ बहुत लम्बी पर बहुत कम चौडी होती हैं। इनके अलावा गुर्दे में धमनियाँ, शिराएँ, केशिका, लसीका की नलियाँ और स्नायु-सूत्र होते हैं।

नली के शुरू का हिस्सा मोटा और गोल होता है और गुर्दे की पीठ की तरफ़ रहता है। यह फूला हुआ सिरा बीच में से



गुर्दे को बनाने वाली एक लबी नली। चित्र न० ५७

दबा रहता है और इस दबे हिस्से में खून की केशिकाओ का झुंड रहता है।

यह ऊपर बताया गया है कि नलियाँ बहुत लंबी होती हैं। हर नली फूले हुए हिस्से से शुरू होकर कई मोड-तोड खाने के बाद एक दूसरी नली से जा मिलती है, जो इसी तरह मोड खाती हुई गुर्दे के किसी और हिस्से से आई है। इस तरह कई नलियों के

मिलने से एक बडी नली बन जाती है। फिर बडी नलियाँ दूसरी नलियों मे जा मिलती है। गुर्दे की मीनारें इन्हीं बड़ी नलियो के समूह हैं। पतली नलियो के शुरू के फूले हुए सिरे और मुडे हुए हिस्से मीनारों के बाहर गुर्दे की पीठ की तरफ वाले भाग में रहते हैं। मीनारो की चोटियों मे जो छेद होते हैं वे बडी बडी नलियों के मुँह हैं। पेशाब इन्हीं छेदों से निकल कर पेशाब की नली (मूत्र-प्रणाली) में आता है।

पेशाब की नलियाँ (मूत्र-प्रणाली)—

गुर्दे दो हैं और ये नलियाँ भी दो हैं। हर नली की लंबाई १० से १२ इच होती है। उसका ऊपरी सिरा चौडा (टोपी के भीतरी भाग की तरह खुला हुआ) रहता है और गुर्दे से जुड़ा रहता है। नीचे का सिरा पतला रहता है। वह वस्तिगह्वर में मसाने (मूत्राशय) से जुडा रहता है। ऊपर के चौड़े भाग की कई शाखाएँ होती हैं। हर छोटी शाखा के मुँह में गुर्दे की एक मीनार की चोटी रहती है। मीनारो से पेशाब इस नली के चौडे हिस्से मे पहुँचता है और उसमें से होकर पेशाब की नलियों में जाता है।

गुर्दों में ख़ून की सफ़ाई—

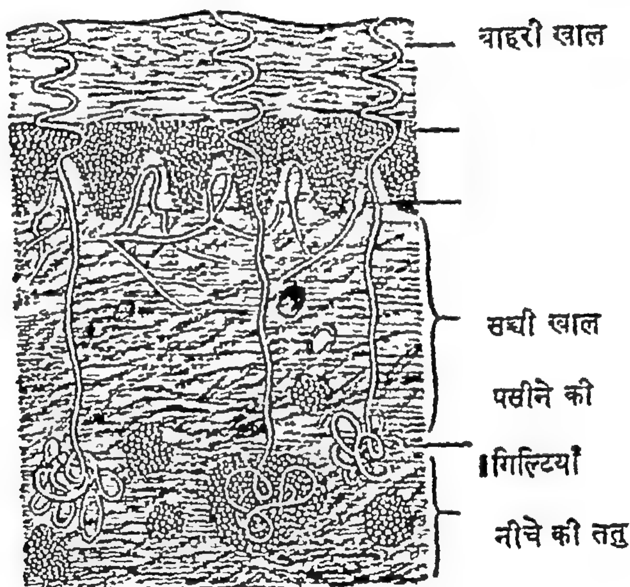
बड़ी धमनी की शाखाओं से ख़ून दोनों गुर्दों में पहुँचता है। भीतर पहुँच कर इस धमनी की अनेक शाखाएँ हो जाती हैं। एक शाखा हरेक नली के फूले हुए भाग में जाती है। इसी से होकर ख़ून क केशिकाओं के झुड में पहुँचता है। केशिका की दीवारो से ख़ून का कुछ पानी जैसा अश चू जाता है और वह नली की दीवार में से होकर उसके भीतर पहुँच जाता है। नली का फूला हुआ सिरा छन्ने का काम करता है। इन्हीं छन्नों से खून का कुछ पतला हिस्सा छन जाता है।

केशिका के झुंड से खून एक नली के रास्ते बाहर निकलता है। इस नली द्वारा खून अब उन केशिकाओं मे पहुँचता है, जो जाल रूप में नली के बचे हुए भाग से चारो ओर फैली हुई हैं। ये केशिकाएँ नली के सेलो से मिली रहती हैं। नली के सेलो का यह स्वाभाविक गुण है कि वे उस लसीका में से, जो उनके पास चू जाता है, यूरिया और यूरिक एसिड इत्यादि पदार्थ ले लें और फिर उसको नली के भीतर पहुँचा दें। नली के भीतर पहुँच कर ये पदार्थ उस पानी में (जो पीछे से फूले भाग से आता है) घुल जाते हैं। यह पानी, जिसमें बेकार और हानिकर पदार्थ मिले रहते हैं, पतली पतली नलियो में बहता हुआ बड़ी बड़ी नलियों में पहुँचता है, जो मीनारो में रहती हैं। फिर मीनारों की चोटियो के छेदो में से निकल कर यह पानी पेशाब की नली के ऊपरी चौड़े हिस्से में पहुँचता है। यही पानी जैसा पदार्थ **पेशाब** (**मूत्र**, urine) है। गुर्दों में धमनियों से, जो खून आता है उसमें यूरिया, यूरिक एसिड आदि बेकार पदार्थ ज्यादा रहते हैं, पर गुर्दों से शिराओं के रास्ते जो खून लौट कर बाहर जाता है उसमे ये पदार्थ कम होते हैं। इसका मतलब है कि गुर्दों में खून की सफ़ाई होती है, और उसके अन्दर का बहुत सा हानिकर पदार्थ पेशाब के रूप में बाहर निकल जाता है।

इस तरह हमने देख लिया कि गुर्दों के कारण शरीर का एक बड़ा काम सधता है। ऐसा न सोचना चाहिए कि यूरिया और यूरिक एसिड जैसे हानिकर पदार्थ गुर्दों में बनते हैं। ये पदार्थ जिगर और मांसपेशियो में तैयार होते हैं—गुर्दे तो सिर्फ इनको छानकर अलग कर देते हैं।

खाल और उसका काम

खाल सारे शरीर को ढके रहती है। और भीतर की मांसपेशियों की रक्षा करती है। खाल बेकार वस्तुओं को शरीर से दूर करती है, शरीर की गर्मी (तापमान, temperature) को ठीक हालत में रखती है, और छूने या छुआ जाने का अनुभव कराती है।



चित्र ०५८

खाल में दो तहें होती हैं—एक बाहरी खाल (उपचर्म, epidermis) और दूसरी सच्ची खाल (चर्म, dermis)।

बाहरी खाल की तह की मोटाई शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में एक सी नहीं है। इसकी मोटाई तलवे पर ⅛ इंच है और चेहरे

पर १/५०८ इंच। बाहरी खाल सख्त होती है और वह सेलों (epithelial cells) की कई तहों के मिलने से बनती है। ये भीतरी सेलों की रक्षा करते हैं और बराबर घिसते रहते हैं। घिस जाने पर भीतर से दूसरे सेल आ जाते हैं। ऊपरी खाल की नीचे की तहों में उस रंग के कण होते हैं, जिससे हमारा शरीर गोरा या साँवला दिखाई पड़ता है।

रंग देने वालों कणों की संख्या यूरप-निवासियों के शरीर में बहुत कम होती है, इसीलिए उनका शरीर गोरा दिखता है। हबशियों में रंग देने वाले कणों की संख्या बहुत अधिक होती है, इसीलिए उनका शरीर काला दिखता है। रंग देने वाले कण प्राकृतिक हैं। प्रकृति जलवायु के अनुसार इन कणों का परिमाण घटाती-बढ़ाती है। ये कण गर्म देशों में रहने वाले लोगों के शरीर में अधिक मात्रा में होते हैं क्योंकि प्रकृति शरीर की गर्मी से रक्षा करना चाहती है। यही कारण है कि भारत में अंगरेजों को हिन्दुस्तानियों की अपेक्षा अधिक गर्मी लगती है।

बाहरी खाल में खून की नलियाँ नहीं होतीं। इसके भीतर जो सेल होते हैं वे अपना खूराक लसीका से पाते हैं, जो सच्ची खाल की सेल से धीरे धीरे निकला करता है। बाहरी खाल में बहुत ही कम, एक प्रकार से नहीं के बराबर, स्नायु-सूत्र हैं। यही कारण है कि कभी कभी बाहरी खाल के कट जाने पर भी हमें पीड़ा नहीं मालूम होती।

जब हम बाहरी खाल की सतह को आतशी शीशे (magnifying lens) से देखते हैं तो हमें उस पर बहुत ही छोटे छोटे छेद (pores) देख पड़ते हैं। इन्हीं छेदों से शरीर के अन्दर का कुछ विकार पसीना के रूप में बाहर निकलता है।

शरीर के अन्दर जो गड्ढे हैं (जैसे मुँह इत्यादि) उन पर एक पतली गुलाबी श्लैष्मिक झिल्ली (mucus membrane)

चढी रहती है। इस झिल्ली का संबंध होठों और पलकों इत्यादि के किनारे के चमड़े से है। यह झिल्ली, बाहरी खाल की तरह, अप्रभावित नहीं रहती। यदि इस पर किसी प्रकार की दवा या रासायनिक पदार्थ पड़ जाता है तो वह तुरन्त ही प्रभावित हो उठती है। यही कारण है कि जो दवा बाहरी खाल पर मले जाने पर भी कोई असर पैदा नहीं करती वह आँख में पड़ जाने या जबान पर रखने पर शीघ्र ही घुल जाती है या कुछ और प्रभाव डालती है।

सच्ची खाल बाहरी खाल के नीचे रहती है और जोड़ने वाले तन्तुओं (connective tissue) से बनी होती है। ये तन्तु ऊपर से मजबूती से लगे रहते हैं पर निचले भाग में कुछ ढीले रहते हैं। तन्तु के निचले भाग में थोड़ी चर्बी भी रहती है।

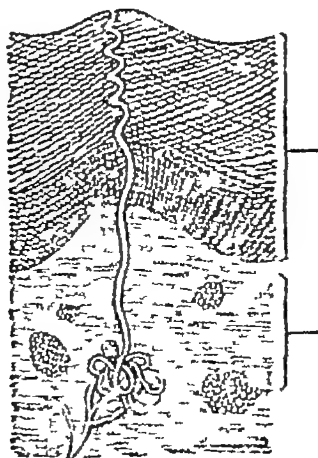
सच्ची खाल के नीचे दूसरे तन्तु होते हैं। इनमें चर्बी की मात्रा अधिक रहती है। ये शरीर के अन्दरूनी भागों के गड्ढों को भरते हैं, जिससे शरीर भरा-पूरा मालूम होता है। सच्ची खाल के नीचे जो तन्तु होते हैं वे ढीले होते हैं। इसी से हम चिकोटी काट सकते हैं। इनमें जो चर्बी रहती है वह शक्ति का संचय करती है और शरीर की गर्मी को अन्दर बनाये रखती है। चर्बी एक ऐसा पदार्थ है कि उसमें से गर्मी बाहर निकल नहीं सकती। सच्ची खाल में स्नायु-जाल, खून की नलियों और लसीका की नलियों का अच्छा प्रबन्ध रहता है। उसके ऊपरी सतह पर उंगलियों की तरह के उभार होते हैं (१६८ पृष्ठ के चित्र में बाहरी खाल के नीचे देखो), जो एक क़तार में निकले रहते हैं। इन्हें पैपिले (papillae) कहते हैं। प्रत्येक पैपिला में खून की केशिकाओं का एक गुच्छा होता है और एक अंडाकार स्नायु समूह भी रहता है। इस स्नायु-समूह का संबंध स्पर्श से है। शरीर के ऐसे भागों में, जो स्पर्श से बहुत जल्द प्रभावित हो उठते हैं, (जैसे कि हथेली, तलवे) ये पैपिले बहुत होते हैं। इन हिस्सों में बाहरी खाल बहुत पतली होती है।

खाल की गिल्टियाँ—

खाल में दो तरह की गिल्टियाँ होती हैं।

(१) तेल जैसी चिकनाई निकालने वाली (sebaceous glands)—ये बालों की जड़ों से सरोकार रखती हैं।

(२) पसीना बनाने वाली (sweat glands)—इनसे पसीना निकलता है। यह पहले बताया जा चुका है कि बाहरी खाल में जो छोटे छोटे सूराख हैं वे पसीने की नलियों से मिले हुए हैं। पसीने की गिल्टी वास्तव में एक नली है, जिसके नीचे का हिस्सा साँप की तरह गेंडुली मारे रहता है। यह सच्ची खाल के निचले हिस्से में रहता है और खून की केशिकाओं से घिरा होता है। जब खून इन केशिकाओं में होकर बहता



पसीना निकालने वाली गिल्टी और उसकी नली। चित्र नं० ५६

है तो इन गिल्टियों के सेल चूई हुई लसीका में से कुछ पानी, यूरिया और कई तरह के नमक ले लेते हैं। यही पानी जैसा पदार्थ पसीना

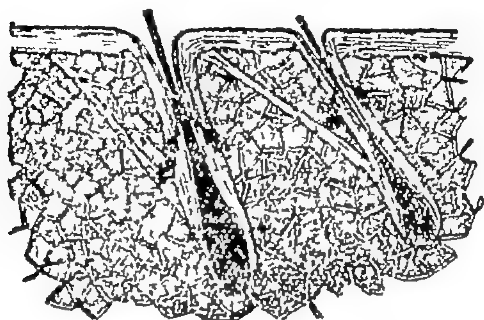
है, जो गिल्टी वाली लबी नली से होकर बाहरी खाल पर पहुँच जाता है। पसीना खाल पर आते ही उड़ जाता है, पर अगर वह अधिक मात्रा में रहता है और बूँद बूँद होकर खाल पर इकट्ठा होता है तब वह नहीं उड़ पाता। जो पसीना बिना हमारे जाने ही खाल पर से उड़ जाय उसे अप्रत्यक्ष पसीना (नहीं दिखाई पड़ने वाला, invisible perspiration) कहते हैं, क्योंकि हमें उसका ज्ञान नहीं रहता, लेकिन जो पसीना बूँद की शक्ल में खाल पर दिखाई पड़ता है और उड़ नहीं पाता उसे प्रत्यक्ष पसीना (visible perspiration) कहते हैं। पसीने का अधिक और कम निकलना मौसम और कसरत या काम करने पर निर्भर है।

पसीने के कई गुणों में से एक गुण यह है कि वह शरीर को एक ही तरह के ताप की दशा मे रखता है। जब गर्मी के दिनो में या कठिन परिश्रम के बाद शरीर के अन्दर गर्मी पैदा हो जाती है तो पसीना निकलने लगता है। इस पसीने के कारण शरीर को ठंडक मिलती है। इस तरह पसीना गर्मी में शरीर को ठंडक पहुँचाता है। गर्मी में और परिश्रम के काम करने पर खाल के आसपास की खून की केशिकाएँ फैलती हैं और खून तेज़ी से बहने लगता है। इसी से पसीने की गिल्टियो को काफ़ी सामान मिलता है और वे अधिक मात्रा में पसीना निकालने लगती हैं।

नाखून और बाल—

ये बाहरी खाल के बढ़े हुए हिस्से हैं। इनमें बाहरी खाल वाले सेलों की शक्ल बदल जाती है, जिससे वे कड़े हो जाते है। नाखून की जड़ में जो सच्ची खाल होती है उसके पास खून की नलियाँ होती हैं और ऊपरी खाल के सेल, जो कि इन्हें ढके रहते हैं, बहुत जल्दी जल्दी बढ़ते रहते हैं। इस तरह बढ़ कर जो सेल बनते हैं वे कड़े हो जाते है और बाहर निकलते हैं। इसी तरह नाख़ून बढ़ता रहता है।

बाल भी बाहरी खाल के ही उभार हैं। हर एक बाल के नीचे एक लम्बा बहुत पतला सूराख होता है और उसकी जड़ में एक गिल्टी होती है। इसी गिल्टी को तेल निकालने वाली गिल्टी कहते



खाल का एक अंश—बाल के अंकुर, तेल निकालने वाली गिल्टियों और बालों से संबंध रखने वाली पेशियों को देखो। चित्र ० ६०

हैं। इससे से तेल की तरह एक पदार्थ निकलता रहता है, जो बाल की जड़ को सींचता और मुलायम रखता है।

हर एक बाल की जड में एक स्वाधीन माँसपेशी लगी रहती है। इसी माँसपेशी के सिकुडने से हमारे रोंगटे खडे होते हैं।

सफ़ाई—

ऊपर बताई बातो से यह अच्छी तरह मालूम होता है कि खाल को साफ़ रखना बहुत जरूरी है। खाल की सफाई न करने से उस पर गर्द, पसीने और नष्ट सेल इत्यादि वस्तुओं की एक तह सी जम जाती है। इस गन्दगी के कारण कीटाणु पैदा होते हैं, जिनसे कई तरह के चर्म-रोग होते हैं। फिर खाल अपना काम ठीक ठीक नहीं कर पाती और उसके बदले गुर्दे को ज्यादा काम करना पड़ता है। अगर गुर्दा इस बेगार के करने योग्य न हुआ तो वह भी बीमार

हो जाता है। अगर पसीने का भाप बन कर उड़ना भी बन्द हो जाय तो बदन की हरारत बढ जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि शरीर की खाल की सफ़ाई का विशेप ध्यान रक्खा जाय, जिससे शरीर निरोग रहे।

शारिरीक गर्मी को बनाये रखना—

जिन मुख्य तन्तुओ में गर्मी पैदा होती है उनमें रासायनिक (chemical) परिवर्तन होते रहते हैं। जैसे माँसपेसियाँ, पसीने की गिल्टियाँ और स्नायु केन्द्रों में ये रासायनिक परिवर्तन उस समय होता है जबकि कार्बन डाय आक्साइड बनती है और गर्मी भी निकलती है। इसलिए माँसपेशियाँ, गिल्टियाँ और दिमाग जितना ही काम करेंगे, उतनी ही अधिक गर्मी पैदा होगी। गर्मी का अधिक या कम पैदा होना भोजन के पदार्थों पर निर्भर है। तेल और घी खाने से जो गर्मी पैदा होती है वह प्रोटीन की गर्मी से दुगनी ज्यादा होती है। श्वेतसार पदार्थ इन दोनो के बीच में आते हैं। इसी से जाड़े और कठिन परिश्रम करने के दिनो में चिकनई और श्वेतसार अधिक खाया जाता है, जिससे कि शरीर में अधिक गर्मी पैदा हो।

जिस प्रकार शरीर में एक ओर गर्मी पैदा होती रहती है, उसी प्रकार दूसरी ओर गर्मी निकलती भी रहती है। इस प्रकार शरीर की हरारत सदा ९८.४ डिग्री F बनी रहती है। शरीर की गर्मी आस-पास की हवा के ठडी होने के कारण निकलती है। शरीर हवा से अधिक गर्म होता है, इसलिए जब हवा शरीर को छूती है, तब वह गर्मी खींच लेती है। पसीने के भाप बनने के कारण भी शरीर से गर्मी निकलती है।

शरीर की हरारत का सम रहना गर्मी पैदा होने और निकलने पर निर्भर है। गर्मी का पैदा करना और निकालना कुछ हद तक मनुष्य के हाथ में है। कुछ लोग कसरत कर और ऊनी कपड़े पहिन

कर शरीर को गर्म रखते हैं, लेकिन शरीर की हरारत का प्रबध अधिकतर स्नायु सस्थान (nervous system) पर निर्भर है। शरीर में खून का घटना-बढ़ना स्नायुओ और खून की नलियों पर निभर है। इन्हीं द्वारा पसीने की गिल्टियाँ भी सचालित होती हैं। यही कारण है कि ठंढे देशो में खाल पीली पड़ जाती है, जिससे ठडक होने के कारण शरीर से अधिक गर्मी न निकले। कपड़ा पहिन कर भी हम शरीर की गर्मी को निकलने से रोकते हैं। जब जाड़े में काफ़ी कपड़ा पहिनने को नहीं होता तो शरीर में कँपकपी पैदा हो जाती है क्योंकि माँसपेशियाँ सिकुड़ सिकुड़ कर गर्मी पैदा करने लगती हैं।

शरीर की हरारत मालूम करने के लिए एक प्रकार का यत्र होता है, जिसे थर्मामीटर कहते हैं। उसमे ९५° से ११०° तक निशान बने होते हैं। आदमी के बदन की हरारत आमतौर पर ९८·४ डिग्री फर्नेहाइट रहती है।

शरीर की हरारत शरीर के प्रत्येक अंग में एक सी होती है। ख़ून का दौरा इस हरारत को ठीक रखता है। शरीर की हरारत कसरत करने से बढ सकती है। ठड या गर्मी का मालूम होना शरीर की हरारत पर निर्भर नहीं है, क्योंकि अक्सर लोगो को जब कि ज्वर चढ़ा होता है, जाडा मालूम पडता है और लोग ठड से काँपने लगते हैं। इसका कारण खाल में ख़ून की नलियाँ हैं। जब ये नलियाँ भरी होती हैं और ख़ून का दौरा तेज़ होता है, उस समय गर्मी मालूम पडती है और जब ये ख़ाली हो जाती हैं और सिकुड़ जाती हैं, उस समय ठंड लगती है।

स्नायु-संस्थान

शरीर के अन्दर **स्नायु-संस्थान** (जिसे **वात संस्थान** या **नाड़ी मंडल**, nervous system, भी कहते हैं) कितना ज़रूरी है, यह पहले बताया गया है। असल में यही संस्थान और संस्थानों का नियमित संचालन करता है। यह तो हम जानते हैं कि शरीर के हरेक अंग का एक मुख्य काम है, जिसे वही अंग, दूसरा नहीं, अच्छी तरह कर सकता है—जैसे, आमाशय का काम है भोजन पचाना, दिल का काम है ख़ून को पम्प करना, फेफड़ों का काम है आक्सीजन ग्रहण करना इत्यादि। इन सब कामों को उचित रीति से कराने के लिए शरीर में स्नायु-संस्थान है। इस संस्थान के संचालन से शरीर में तरह तरह की हरकतें होती हैं। गिल्टियों से ज़रूरी रस निकलते हैं, सोचने, समझने, दुख-सुख अनुभव करने और किसी काम के लिए संकल्प करने की क्रियाएँ होती हैं। जिस तरह एक शक्तिशाली शासक अपने क़िले में बैठा हुआ अपनी सल्तनत के सभी हिस्सों पर शासन और उनका संचालन करता है—वहाँ से सभी तरह की ख़बरें बराबर पाता रहता है और हर ज़रूरी काम के लिए अपने आदेश भेजता रहता है—उसी तरह स्नायु-संस्थान का मुख्य केन्द्र दिमाग (मस्तिष्क) स्नायु-तारों द्वारा शरीर के सभी हिस्सों की सभी छोटी बड़ी बातों को जानता है और उनका उचित नियन्त्रण और संचालन करता है।

स्नायु-संस्थान के दो भाग—

स्नायु संस्थान दो भिन्न भिन्न, तो भी एक दूसरे से संबंध रखने वाले, संस्थानों से बना है। एक तो बीच का संस्थान है। उसे

मध्यस्थ स्नायु-संस्थान कहते है (**मध्यस्थ वात-संस्थान, मस्तिष्क-मेरुदंडात्मक संस्थान**, central or cerebro-spinal system) कहते हैं, और दूसरा **स्वतंत्र स्नायु-संस्थान** (**स्वतंत्र वात संस्थान**, sympathetic nervous system) कहा जाता है।

मध्यस्थ स्नायु-संस्थान के हिस्से हैं **मस्तिष्क** (दिमाग brain), **सुषुम्ना** (spinal cord) और वे **स्नायु-तार या सूत्र** जो मस्तिष्क और सुषुम्ना से निकल कर शरीर के विविध अंगो में जाते हैं। ये स्नायु तार खास कर खाल, अनुभवशील (दुख-सुख समझने वाले) अगों और इच्छाधीन (voluntary) पेशियो में फैले हुए हैं।

स्वतंत्र स्नायु-संस्थान दो शृंखलाओ (डोरी या जजीर की तरह पदार्थ) से बनता है, जो मेरुदंड के दोनों तरफ़ खोपडी से चलकर कूल्हे तक जाती हैं। इन जजीरों पर बहुत सी छोटी-छोटी **गाँठें** (**गड**, ganglia) रहती हैं। इन गाठों में स्नायविक पदार्थ भरा रहता है, और इनसे बहुत से स्नायु सूत्र निकल कर भीतरी अंगों (दिल, आमाशय, आँतों) और ख़ून की नलियों तक पहुँचते हैं। इसके साथ ही इन गाँठों से शाखाएँ निकल कर सुषुम्ना से निकली स्नायुओ से भी मिलती हैं, और इस तरह स्वतत्र स्नायु-संस्थान का मध्यस्थ स्नायु-सस्थान से लगाव रहता है।

ऐसा हो सकता है कि जो ख़बरें या आदेश या प्रेरणाएँ स्वतंत्र सस्थान की स्नायुओं के सहारे दिल, आमाशय या आँतों की स्वाधीन (involuntary) पेशियों तक या गिल्टियों तक पहुँचती हैं वे मध्यस्थ स्नायु सस्थान से निकली हों, पर चूँकि उन्हें ऐसी पेशियों या अवयवों पर पहुँचना होता है, जो मनुष्य की इच्छा के वश

में नहीं हैं वे स्वतंत्र स्नायु संस्थान के तारों से होकर उन पेशियों या अवयवो तक पहुँचती हैं। इस संस्थान के संबंध में एक आवश्यक बात यही है कि यह उन कार्रवाइयो को नियंत्रित और संचालित करता है जो मनुष्य की इच्छा के अधीन नहीं हैं, जैसे भोजन का पचना, खून का सारे शरीर मे दौरा करना, इत्यादि।

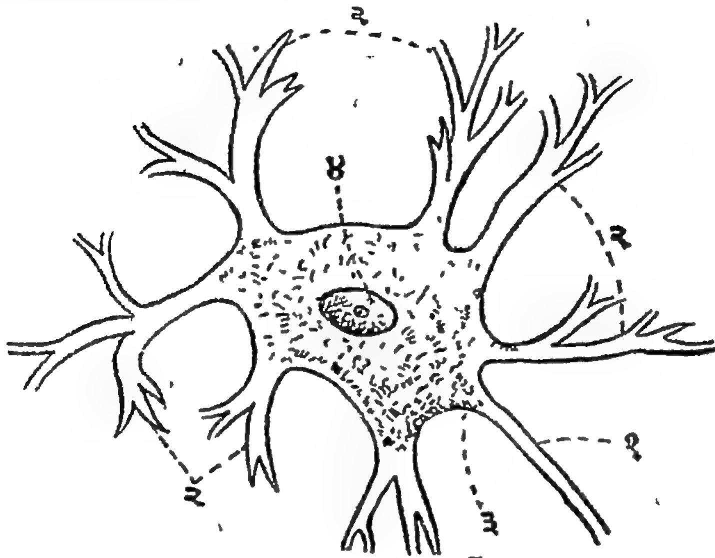
स्नायु सेल—

मध्यम और स्वतंत्र स्नायु संस्थानो की स्नायु दो तरह के पदार्थों से बनी होती हैं। एक तरह का पदार्थ धूसर (भूरे) रंग का होता है और दूसरी तरह का पदार्थ सफेद रंग का। खुर्दबीन से देखने से धूसर पदार्थ स्नायु सेलों से बना मालूम होता है और सफेद पदार्थ स्नायु सूत्रों से। स्नायु सेल की बनावट बड़े महत्व की होती है। बिल्कुल बीचो बीच जीवीज (protaplasm) रहता है और उसके बीच में मींगी (nucleus)। फिर चारों तरफ से कई शाखाएँ निकली होती हैं। उन शाखाओ से भी कई प्रशाखाएँ निकलती हैं और एक दूसरे से उलझी और मिली रहती हैं। लेकिन इनमें एक शाखा ऐसी होती है, जिसमें से सिवा अंत के स्थान के और कहीं से शाखाएँ नहीं निकलतीं। यह बहुत लंबी शाखा होती है और म्यान की तरह एक खोल से ढकी होती है। यही स्नायु-सूत्र है।

प्रत्येक स्नायु सेल अपनी शाखा-प्रशाखाओं के साथ दूसरे स्नायु सेल से अलग रहने वाला पदार्थ है। अगर एक का दूसरे से संबंध होता है दो प्रशाखाओं के उलझने के ही कारण, किसी दूसरी तरह नहीं। शाखा-प्रशाखाओं के साथ प्रत्येक स्नायु सेल को **न्यूरोन** (neuron) कहते हैं।

ऊपर बताया गया है कि सफेद पदार्थ स्नायु सूत्रो से बना होता है; और यह भी बताया गया है कि स्नायु सूत्र भूरे रंग के स्नायु

सेल से ही निकलता है। इस तरह स्नायु-सस्थान में सारा खेल न्यूरोन का ही है। स्नायु, सस्थान न्यूरोनों का एक समूह है।



एक स्नायु सेल

१—स्नायु सूत्र; २—शाखा प्रशाखाएँ; ३—सेल का मुख्य भाग, जीवोज, ४—मींगी। चित्र न० ६१

स्नायु—

अब हमें मालूम हो गया कि एक स्नायु कई पतले पतले स्नायु सूत्रों से बनती है। स्नायु सूत्र न्यूरोन से निकलते हैं और बधक तंतु के सहारे एक दूसरे से अच्छी तरह मिले और बँधे होते हैं। बहुत से स्नायु सूत्रों के ऊपर चर्बीदार पदार्थ का एक खोल चढ़ा होता है, जिसे मेदसावरण (medullaıy sheath) कहते हैं, लेकिन कुछ स्नायु सूत्र ऐसे भी हैं (खास कर स्वतत्र स्नायु-सस्थान वाले) जिन पर यह मेदसावरण (चर्बीदार खोल) नहीं होता।

यह हम पढ़ चुके हैं कि स्नायुओ के सहारे मस्तिष्क को बाहरी खबरें पहुँचती हैं और मस्तिष्क से चली प्रेरणाएँ और आदेश भिन्न भिन्न अगो की पेशियों तक आते हैं। इस विचार से स्नायु दो तरह की हैं। एक वह जो सुषुम्ना और मस्तिष्क के स्नायु केन्द्रों की तरफ जाती हैं और समाचार पहुँचाती है। इन्हें **केन्द्रगामी** (afferent) **स्नायु** कहते हैं। दूसरी वह जो स्नायु केन्द्रो से चल कर किसी पेशी या गिल्टी तक आती और उसे मस्तिष्क का आदेश देती हैं। इन्हे **केन्द्रत्यागी** (efferent) **स्नायु** कहते हैं। केन्द्रगामी तारों में बहुत से ऐसे हैं, जिनके कारण किसी तरह की **संवेदना** (sensation) का बोध होता है या किसी तरह की **चेतना** का अनुभव होता है, जैसे देखना, छू जाना, सूँघना इत्यादि। इन्हें **सावेदनिक** (sensory) **स्नायु** कहते हैं। फिर केन्द्रत्यागी तारो मे बहुत से ऐसे हैं, जिनकी प्रेरणा से पेशियों में किसी तरह की गति होती है। ये **गतिसबधी** या **चालक** (motor) **स्नायु** हैं। अगर किसी केन्द्रत्यागी स्नायु की प्रेरणा से किसी गिल्टी मे रस उत्पन्न होता है तो उस **रसोत्पादिनी स्नायु** कहते हैं और अगर किसी ऐसी ही स्नायु के कारण खून ले जाने वाली नलियाँ चौड़ी या सकरी होती हैं तो उन्हें **रक्त-नलिका नियंत्रक** (vaso-motor) स्नायु कहते हैं। इस तरह यह साफ है कि सभी केन्द्रत्यागी स्नायु केवल चालक नहीं हैं और न सभी केन्द्रगामी स्नायु केवल सांवेदनिक।

कुछ स्नायु सिर्फ सावेदनिक हैं और कुछ केवल चालक, लेकिन अधिकांश स्नायु मिले-जुले (मिश्रित) प्रकार की हैं। उनमें सांवेदनिक और चालक दोनो तरह के सूत्र रहते हैं और वे दोनों ओर प्रेरणाएँ ले जा सकते हैं।

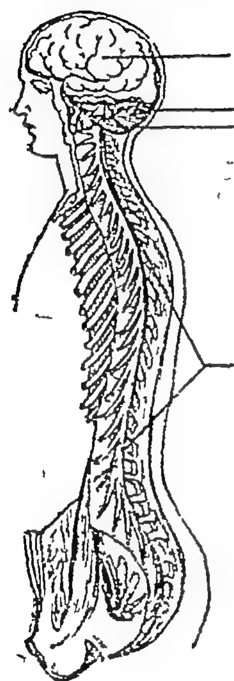
एक प्रेरणा एक सेकंड में लगभग १०० फ़ुट तक पहुँचती है। यह काफ़ी तेज गति है, पर रोशनी या बिजली की गति इससे भी तेज़ है।

मस्तिष्क (दिमाग़, brain) —

मस्तिष्क मध्यस्थ स्नायु संस्थान का एक जरूरी हिस्सा है। यह हम पढ़ चुके हैं कि मस्तिष्क खोपड़ी में सुरक्षित रहता है। खोपड़ी के कारण तो मस्तिष्क सुरक्षित रहता ही है पर प्रकृति ने उसकी विशेष रक्षा के लिए उस (मस्तिष्क) पर तीन झिल्लियाँ भी चढ़ा रखी हैं। इन झिल्लियों को **आवरण,** मस्तिष्क के ऊपर के आवरण, कहते हैं। बाहरी आवरण (सब से बाहर का आवरण, dura mater) मोटा और मजबूत होता है। बीच का आवरण (arachnoid) पतला और कोमल होता है, और अंतावरण (नीचे का आवरण, pia mater) और भी पतला और मस्तिष्क से चिपटा रहता है। अंतावरण को मस्तिष्क से अलग करना बहुत कठिन है। हम आगे पढ़ेंगे कि मस्तिष्क में बहुत सी घाइयाँ (उभार और गड्ढे) हैं, जिन्हें सीता कहते हैं। अंतावरण मस्तिष्क से चिपटा रहने के कारण सीताओं में भी घुसता है। बाक़ी दो आवरण सीताओं में नहीं घुसते बल्कि ऊपर ही रहते हैं। बीच के आवरण के ऊपर और नीचे एक तरह का थोड़ा सा तरल पदार्थ रहता है, जिससे यह बीच वाला आवरण पानी की गद्दी का काम करता है। उछलने, कूदने जैसी हरकतों में इस पानी की गद्दी के कारण मस्तिष्क में सदमा (चोट) नहीं पहुँचता। अंतावरण में बहुत सी ख़ून की नलियाँ रहती हैं, जिससे वह ख़ून से भरा रहता है और चूँकि वह मस्तिष्क से चिपटा रहता है उसी सहारे मस्तिष्क को ख़ून मिलता है।

मस्तिष्क के चार मुख्य हिस्से हैं :—

(१) बड़ा मस्तिष्क (बृहत् मस्तिष्क, cerebrum), जो मस्तिष्क का सबसे बड़ा हिस्सा है और मस्तिष्क को ऊपर की तरफ से देखने से दिखाई देता है।



मस्तिष्क और सुषुम्ना

चित्र नं० ६२

(२) छोटा मस्तिष्क (लघु मस्तिष्क, cerebellun) जो बड़े मस्तिष्क के पिछले भाग के नीचे रहता है और मस्तिष्क की नली को देखने से दिखाई देता है। (३) सेतु बुल्ल, pons varolu). जो छोटे मस्तिष्क के दाहिने और बायें हिस्सों के बीच में है। यह मस्तिष्क के ही पदार्थ का बना हुआ दोनो हिस्सो के बीच एक पुल की तरह है।

(४) सुषुम्ना शीर्षक (medulla oblongata), जो सेतु के नीचे एक लम्बा सा अङ्ग है। सुषुम्ना शीर्षक के नीचे के भाग से सुषुम्ना का आरम्भ होता है।

बड़ा मस्तिष्क

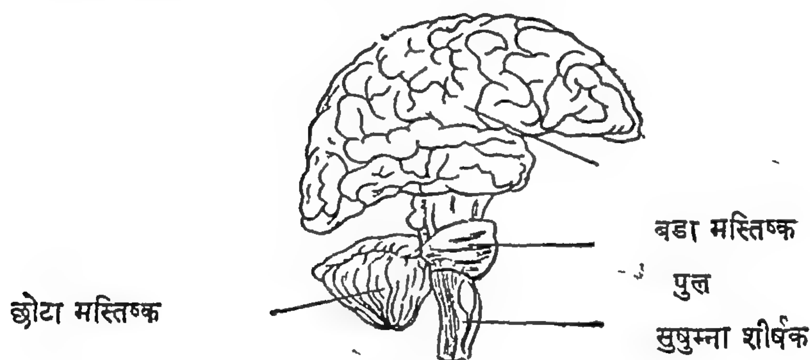
मस्तिष्क के इस हिस्से में कुल मस्तिष्क के भार का ८७.५% हिस्सा रहता है। बड़े मस्तिष्क के दो टुकड़े हैं। इन दोनो के बीच

में एक दरार (अंतर, fissure) रहता है। दरार के दोनों तरफ़ बड़े मस्तिष्क के जो हिस्से हैं वे **दाहिने और बायें गोलार्द्ध** (cerebral hemispheres) कहलाते हैं। अगर ये दोनो गोलार्द्ध एक दूसरे से बिल्कुल अलग कर दिये जायें तो इस दरार की नली में इन दोनों गोलार्द्धों को जोड़ती हुई एक चौडी सफ़ेद चीज़ दिखाई देगी। यह सफेद चीज़ भी स्नायविक पदार्थ है और **महासंयोजक** कहलाती है।

बाहर से देखने से बड़े मस्तिष्क पर बहुत सी धारियाँ दिखती हैं, जिनके कारण कहीं उभरे हुए और कही गहरे हिस्से दिखते हैं। जिस तरह हल चलाने से खेत में नालियाँ बन जाती हैं, जिनके बीच में मिट्टी की उभरी हुई मेढ़ें रहती हैं उसी तरह बड़े मस्तिष्क पर बहुत सी नालियाँ (गहराइयाँ) होती हैं और इनके बीच बीच में मस्तिष्क के हिस्से उभरे रहते हैं। खाई को **सीता** (fissure) और दो सीताओ के बीच के उभरे हिस्से को **चक्रांक** (convolutions) कहते हैं। (चित्र न० ६२ मे देखो) मस्तिष्क की सीताओ की गहराई का बुद्धि से बहुत घना संबध है। बुद्धिमान मनुष्यों में ये सीताएँ मूर्खों और पागलो की अपेक्षा ज्यादा गहरी होती हैं।

ऊपर बताया गया है कि स्नायु दो तरह के पदार्थों से बनी है—धूसर (भूरा) और सफ़ेद। बडे मस्तिष्क में धूसर पदार्थ बाहर रहता है और सफ़ेद पदार्थ को ढके रहता है। धूसर पदार्थ सफ़ेद पदार्थ के चारो तरफ़ इस तरह लगा रहता है जैसे फलो में गूदे के ऊपर छिलका। बाहर वाले धूसर हिस्से को **वल्क** (cortex) कहते हैं। वल्क की मोटाई बुद्धिमानो में मूर्खों की अपेक्षा ज्यादा होती है। धूसर हिस्सा स्नायु सेलो से बनता है और भीतर का

सफेद हिस्सा स्नायु सूत्रों से, जो बल्क से निकलते हैं या बल्क मे जाते हैं। बाहरी धूसर भाग के सबध में दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह न्यूरोन के समूहो से बना है और उसमें अलग अलग हिस्से बन गये हैं, जो मस्तिष्क के अलग अलग कामों से संबध रखते हैं। प्रत्येक भाग, जो एक विशेष काम के लिए निश्चित है, एक केन्द्र (centre) कहलाता है । केन्द्रो के नाम उनके काम के अनुसार रखे गये हैं, जैसे **दृष्टि केन्द्र** (जिसका देखने से सम्बन्ध है), **श्रवण केन्द्र** (जिसका सुनने से सरोकार है), **घ्राण** (सूँघना) **केन्द्र**, **स्वाद** केन्द्र इत्यादि।



मस्तिष्क के हिस्से। चित्र न० ६३

प्रत्येक गोलार्द्ध भीतर से खोखला होता है। इस तरह बड़े मस्तिष्क में दो कोष्ठ (खाने) होते हैं, एक दाहिना, दूसरा बायाँ।

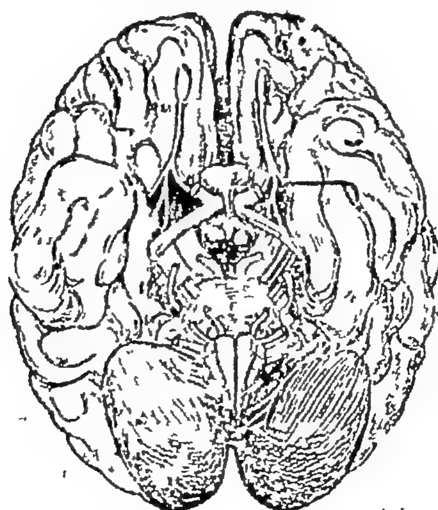
बड़े मस्तिष्क के काम—

बड़े मस्तिष्क के काम अनेक और बहुत पेचीदगी वाले हैं। सवेदना, विचार-शक्ति, स्मरण-शक्ति, प्रतिज्ञाबल, कार्य करने की

प्रेरणाएँ, भाव, सभी का संबध बड़े मस्तिष्क से है। यही बुद्धि और ज्ञान का केन्द्र है, और इसी के सहारे हम सोचते, सीखते, समझते, निर्णय करते और बातो को याद रखते हैं। इसी के सहारे हम अपने आस-पास की चीजों का निरीक्षण करते और उनका ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसी से हम प्रतिज्ञा और विचारमय क्रियाएँ करते हैं। मस्तिष्क के इसी हिस्से में विविध भाव (emotions) भी, जैसे प्रेम, घृणा, भय, हर्ष, विषाद, उदय होते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, इसके अलग अलग हिस्से अलग अलग कामों के लिए नियत हैं। कुछ हिस्से ऐसे हैं, जिनमें प्रेरणाएँ और बाहरी समाचार पहुँचते हैं। ये सावेदनिक केन्द्र हैं। कुछ हिस्सों से प्रेरणाएँ निकलती हैं। ये चालक केन्द्र हैं।

बड़े मस्तिष्क का काम और उसकी उपयोगिता जानवरों पर किये गये प्रयोगो और मनुष्य के रोगों के निरीक्षण से निश्चित



मस्तिष्क, नीचे की तरफ़ से। चित्र न० ६४

की गई है। नीचे दिये उदाहरणों से इन प्रयोगो और उनके फलों का कुछ पता चलेगा :—

(अ) अगर एक मेढक का बड़ा मस्तिष्क नष्ट हो जाता है तो वह साधारण तौर पर बैठा रहता है, सांस लेता है। अगर मुँह में कुछ खाद्य पदार्थ रखा जाय तो उसे निगल लेता है—खुद खाने की कोशिश नही करता है। अगर वह पीठ के बल रख दिया जाय तो घूम कर फिर बैठ जाता है और अगर पानी मे छोड़ा जाय तो तैरने लगता है। अगर उसको अकेला छोड़ दिया जाय और कुछ छेड-छाड़ न की जाय तो वह तब तक बैठा रहेगा जब तक मर न जाय। इससे यह मालूम होता है कि वह (बड़े मस्तिष्क के न रहने पर) अपनी इच्छा से कोई भी काम नहीं करता बल्कि उन प्रेरणाओं से प्रेरित होकर काम करता है, जो बाहर से सुषुम्ना और सुषुम्ना शीर्षक के सहारे आती हैं और उसे प्रेरित करती हैं। अपनी इच्छा के अनुसार स्वयं काम कर सकना बड़े मस्तिष्क के सहारे ही होता है।

(ब) अगर किसी के सिर पर ऐसी चोट लगे कि उसका प्रभाव मस्तिष्क तक पहुँच जाय तो वह बेहोश पडा रहता है। अगर सेवा-सुश्रूषा से सदमा दूर हो गया तो वह आदमी फिर होश में आ जाता है, लेकिन अगर चोट बहुत गहरी है तो वह बेहोशी की हालत मे ही मर जाता है।

(स) कुछ बच्चो का बड़ा मस्तिष्क जन्म से ही छोटा रहता है। फल-स्वरूप वे बोदे और मूर्ख होते हैं। इसके विपरीत बुद्धिमान और ज्ञान-संपन्न मनुष्यों का बड़ा मस्तिष्क बराबर बड़ा पाया जाती है। जिस तरह खेल-कूद और करसतों से हाथ-पैर की पेशियाँ पुष्ट होती हैं उसी तरह सोचने, विचारने और पढ़ने से बड़ा मस्तिष्क बड़ा और परिष्कृत होता है। जो लड़कपन से ही अच्छी तरह पढ़ता-लिखता है वह अपने बड़े

मस्तिष्क को परिपुष्ट करता है और उसकी मस्तिष्क-सम्बन्धी शक्तियाँ जीवन भर उसके काम आती हैं।

(द) शराब इत्यादि के व्यवहार से मस्तिष्क के इस हिस्से पर बुरा प्रभाव पड़ता है और नशेबाज़ की बुद्धि और प्रतिज्ञा-बल का धीरे धीरे ह्रास होता जाता है। कभी कभी ज़ोरदार नशे में आदमी बेहोश मुर्दे की तरह गिर भी जाता है।

छोटा मस्तिष्क

छोटा मस्तिष्क (लघु मस्तिष्क) बड़े मस्तिष्क से बहुत छोटा होता है और उसके नीचे पीछे की तरफ़ रहता है। उसका आकार एक पिचके गोले से, जिसकी चौड़ाई ज्यादा रहती है और मोटाई कम, बहुत मिलता है। उसकी पीठ पर भी घाइयाँ (सीताएँ) होती हैं, जो बडे मस्तिष्क की घाइयों से ज्यादा गहरी होती हैं और पास पास और ज्यादा समानान्तर रहती हैं। मस्तिष्क का अन्तावरण (pia mater) छोटे मस्तिष्क के हिस्सों में अच्छी तरह अन्दर तक पहुँची होती है। छोटे मस्तिष्क में भी धूसर (भूरा) पदार्थ बाहर रहता है और सफ़ेद पदार्थ को ढँके रहता है।

छोटा मस्तिष्क भी बहुत ज़रूरी काम करता है। उसी के कारण शरीर में ठीक तरह से गतियाँ होती हैं। गतियो के ठीक रहने से शरीर में समता और सन्तुलन शक्ति रहती है। किसी शराबी के लड़खड़ाने का यही कारण है कि उसका छोटा मस्तिष्क शराब के प्रभाव से विवश रहता है। पेचीदे और नाज़ुक कामों में पेशियों का सन्तुलन (balancing) छोटे मस्तिष्क के ही सहारे होता है। चित्रकारी और बाजा बजाना जैसे कठिन काम छोटे मस्तिष्क के सचालन से होते हैं। मस्तिष्क के इसी हिस्से में सांवेदनिक ख़बरें पेशियों, जोड़ और नलियों से आती हैं और इसी हिस्से से चालक प्रेरणायें भेजी जाती हैं, जिससे टहलने, दौड़ने

जैसे कठिन कामो में पेशियो की गति ठीक ठीक हो पाती है। अगर छोटे मस्तिष्क को ज़ोर की चोट लगे या उसमे किसी तरह की ख़राबी आ जाय तो सिर में चक्कर होता है और शरीर की समता और सन्तुलन शक्ति जाती रहती है।

छोटे मस्तिष्क का दाहिना हिस्सा बड़े मस्तिष्क के बाये हिस्से का और बायाँ हिस्सा दाहिने हिस्से का सहकारी है। इस तरह शरीर के बायें भाग की गतियो का छोटे मस्तिष्क के बायें भाग से और दाहिने भाग की गतियो का छोटे मस्तिष्क के दाहिने भाग से सम्बन्ध है।

सेतु

छोटे मस्तिष्क के सामने पुल के मेहराब की तरह मुड़ा हुआ सफ़ेद रग का जो हिस्सा है उसे सेतु कहते हैं। यह सुषुम्ना शीर्षक (आगे देखो) के ऊपर से निकलता है और छोटे मस्तिष्क के दोनों भागों को मिलाये रखता है। बड़े मस्तिष्क से स्नायु-सूत्र सेतु से होकर ही जाते है और यहीं बड़े मस्तिष्क के दाहिने और बायें गोलार्द्ध से आये हुए सूत्र एक दूसरे को पार करते हैं—दाहिने गोलार्द्ध से आये हुए स्नायु-सूत्र सेतु के बायें भाग से होते हुए शरीर के बाये भाग की पेशियों तक पहुँचते हैं और बायें गोलार्द्ध के आये हुए स्नायु सूत्र सेतु के दाहिने भाग से होते हुए शरीर के दाहिने भाग की पेशियो तक पहुँचते हैं। इससे यह होता है कि अगर दाहिने गोलार्द्ध में कुछ ख़राबी होती है तो शरीर के बायें भाग में लक़वा होता है या इच्छाधीन गतियाँ बंद हो जाती हैं और अगर बायें गोलार्द्ध में ख़राबी हो तो शरीर के दायें भाग की गतियाँ रुक जाती हैं। सेतु के ठीक सामने पिट्यूट्री गिल्टी है, जिसका वर्णन पहले आ चुका है।

सुषुम्ना शीर्षक

सेतु के पीछे और उससे लगा हुआ खोपड़ी के अन्दर रहने वाला मस्तिष्क का जो हिस्सा है उसको सुषुम्ना शीर्षक कहते हैं। इस अंग के नीचे के हिस्से से सुषुम्ना शुरू होती है। छोटी मस्तिष्क के दोनों भागों के बीच में रहने वाला स्नायविक पदार्थ का बना यह गोलाकार अंग (सुषुम्ना शीर्षक) सुषुम्ना को मस्तिष्क से मिलाता है। मस्तिष्क के दूसरे हिस्सों में धूसर पदार्थ बाहर रहता है और सफ़ेद पदार्थ भीतर, सुषुम्ना शीर्षक में सफ़ेद पदार्थ बाहर रहता और धूसर पदार्थ अन्दर।

सुषुम्ना शीर्षक एक बड़ा ही महत्वपूर्ण अंग है, क्योंकि जितने भी स्नायु सूत्र सुषुम्ना से निकल कर मस्तिष्क को जाते हैं वे सभी सुषुम्ना शीर्षक से होकर जाते हैं। इसी में शरीर की कई जरूरी क्रियाओं, जैसे साँस लेना, रक्त-संचार, निगलना इत्यादि, के केन्द्र स्थित हैं। मस्तिष्क के इस भाग (सुषुम्ना शीर्षक) में चोट लगने से उसी समय मृत्यु हो जाती है।

मस्तिष्क से निकलने वाली स्नायु (मस्तिष्क नाड़ियाँ, cranial nerves)—

मस्तिष्क के निचले हिस्से में स्नायु के १२ जोड़े निकलते हैं। उनकी गिनती सामने से पीछे को पहली, दूसरी, तीसरी इत्यादि होती है। ये स्नायु छोटे छोटे छेदों से होकर खोपड़ी से निकलती हैं और सुख-दुख अनुभव करने वाली (ज्ञान) इन्द्रियों या पेशियों या सिर की खाल में फैल जाती हैं। नवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें जोड़ों को छोड़कर स्नायु के शेष जोड़े ऊपर बताये अंगों में बँटी रहती हैं। नवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें जोड़े

दूसरी दूसरी इन्द्रियो और अंगो में भी अपनी शाखायें भेजते हैं। मस्तिष्क की बहुत सी स्नायु सांवेदनिक हैं, कुछ चालक भी हैं, और कुछ मिली-जुली हैं। (सुषुम्ना से जितनी स्नायुएँ निकलती हैं वे सभी मिली-जुली हैं अर्थात् सांवेदनिक और चालक दोनों ही हैं।) मस्तिष्क से निकलने वाली स्नायुओं के १२ जोड़े इस तरह हैं :—

पहले जोड़े का सम्बन्ध गन्ध से है। ये घ्राण स्नायु (olfactory nerves) कहलाती हैं। ये सांवेदनिक स्नायु हैं और इनका अंत नाक की श्लैष्मिक झिल्ली मे होता है। इनसे गंध का अनुभव होता है।

दूसरा जोड़ा दृष्टि स्नायु (optic nerves) का है। ये देखने की नाडियाँ है और आँख के गोले तक जाती हैं। ये मस्तिष्क के निचले सतह पर ठीक पिट्यूट्री गिल्टी के सामने एक दूसरे को पार करती हैं।

तीसरे, चौथे और छठे जोडो का संबंध आँख की गति मे है। ये चालक स्नायु हैं और उन पेशियो में पहुँचती हैं, जो आँखो को चारों तरफ घुमाती-फिराती हैं। ये पेशियाँ छः हैं, चार सीधी और दो तिरछी। दो तिरछी पेशियो में से एक का संचालन चौथा जोड़ा (कटाक्षिणी स्नायु, trochlear nerves) चार सीधी पेशियों में से बाहरी सीधी पेशी का संचालन छठा जोड़ा (नेत्रपार्श्विकी स्नायु, abducent nerves), और बाक़ी चार पेशियों का संचालन तीसरा जोड़ा नेत्रचालनी स्नायु, (oculomotor nerves) करता है। आँख के गोले की मुख्य चालक स्नायु इसी तीसरे जोड़े की स्नायु हैं।

पाँचवाँ जोड़ा मिली-जुली स्नायुओं का है। इसकी तीन बडी बड़ी शाखाएँ हैं, जिनमें से एक सावेदनिक है और आँख, नाक, मुँह, दाँत और गाल के आस-पास के भागों मे फैलती हुई जीभ के सामने के भाग में समाप्त हो जाती है। इसी स्नायु के कारण चेहरा और दाँत इत्यादि के दर्दों का बोध होता है और इसी से स्वाद का भी अनुभव होता है। पाँचवे जोड़े की दो शेष शाखाएँ चालक स्नायुओं की हैं और उन पेशियों तक जाती हैं, जो भोजन चबाते समय जावड़ो को घुमाती-फिराती हैं। इस जोड़े का नाम **त्रिशाखा स्नायु** (trigeminal nerves) है।

सातवाँ जोड़ा **मौखिक स्नायुओं** (facial nerves) का है। इनका सबंध चेहरे की पेशियों की गति से है।

आठवें जोडे का सम्बन्ध सुनने से है। ये **श्रावणी स्नायु** (auditory nerves) हैं और भीतरी कान को जाती हैं।

नवाँ जोड़ा मिली जुली स्नायुओं का है। इसकी एक शाखा सावेदनिक है और जीभ के पिछले हिस्से में फैली रहती हैं। यह स्वाद की नाडी है। दूसरी शाखा चालक और कंठ की पेशियों को सचालित करती है, जिनके सहारे निगलने की क्रिया होती है। इस जोड़े का नाम **जिह्वा-कंठ स्नायु** (glosso-pharyngeal nerves) है।

दसवाँ जोड़ा भी मिली-जुली स्नायुओं का है, जो फेफड़े, दिल, जिगर और आमाशय को जाती हैं। बहुत भागो में फैले रहने के कारण ये **भ्रामक स्नायु** (vagus nerves) कहलाती हैं, पर इनका महत्त्व इतना है कि ये **प्राणदा नाड़ियाँ** (pneumogastric) भी कहलाती हैं।

ग्यारहवाँ जोड़ा चालक स्नायुओं का है, जो गर्दन की कुछ पेशियों की गति से सम्बन्ध रखती हैं। इन्हें मेरुसहायक स्नायु (spinal accessory nerves) कहते हैं।

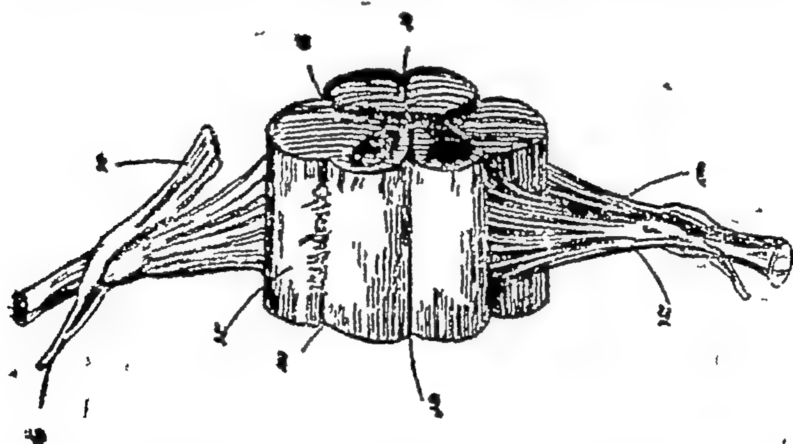
बारहवाँ जोड़ा भी चालक स्नायुओं का है। जीभ के नीचे की पेशियों से सम्बन्धित रहने के कारण जिह्वाधोवर्त्ती स्नायु (hypoglossal nerves) कहलाती हैं।

स्नायु-संस्थान

(जारी)

सुषुम्ना—

सुषुम्ना स्नायविक पदार्थों से बनी हुई बेलन के आकार की एक रस्सी की तरह चीज है। यह खोपड़ी के बड़े छेद (महाछिद्र, foramen magnum) से शुरू होकर काशेरुकी नली (रीढ़ की



सुषुम्ना का एक टुकड़ा, सामने से। दोनों तरफ़ से स्नायु निकलती हैं।

१—सामने की घाई, २—पीछे की घाई; ३—वह स्थान, जहाँ से स्नायु की अगली जड़ निकलती है, ४—वह जड़, जहाँ से पिछली जड़ निकली है, ५—अगली जड़, ६—पिछली जड़; चित्र नं० ६५

नली) में नीचे उतरती है और कमर के दूसरे मोहरे के पास समाप्त हो जाती है। यहाँ पर स्नायुओं का गुच्छा सा फैल जाता

है। मस्तिष्क की तरह सुषुम्ना भी तीन आवरणो से ढकी है। सुषुम्ना की लंबाई लगभग १८ इच के होती है। सुषुम्ना की अगली पीठ पर ठीक बीचो-बीच में एक खाई होती है। पिछली पीठ भी ठीक बीचोबीच में दबी रहती है। इन दोनो खाइयो के इधर उधर सुषुम्ना के एक ही जैसे दो बराबर हिस्से होते हैं। इन हिस्सों को पार्श्वार्द्ध कह सकते हैं। इन दोनों हिस्सो के बीच में एक नली है, जिसे सौषुम्न नली कहते हैं और जो मस्तिष्क से मिली रहती है। सुषुम्ना के दोनों बग़लो (ऊपर कहे हिस्सों) से थोडी थोडी दूर पर स्नायुएँ (नाड़ियाँ) निकलती हैं। इन स्नायुओ के ३१ जोड़े होते हैं। हरेक स्नायु सुषुम्ना से दो जड़ों से जुडी रहती है, अगली जड़ (**पूर्व मूल**, anterior root) और **पिछली जड़** (**पाश्चात्य मूल**, posterior root)। दोनो जड़ें सुषुम्ना के पास ही एक दूसरे से मिल जाती हैं और अक्सर यह मेल ऊपर और नीचे के दो मोहरों के बीच में ही हो जाती है। दोनों जड़ो के मेल से पूरी स्नायु बनती है।

सुषुम्ना की स्नायुओ के बारे में यह जानना चाहिए कि ये मिश्रित (मिली-जुली) स्नायुएँ हैं, अर्थात् हरेक स्नायु का एक तार सांवेदनिक है और दूसरा चालक है। यह बताया गया है कि प्रत्येक स्नायु की दो जड़ें हैं। अगली जड के तार सुषुम्ना के भीतर से निकलने और अंगो की ओर जाते हैं। इनका सम्बन्ध पेशियों की गति से है, इसलिए ये चालक हैं। पिछली जड के तार अगो की ओर से आकर सुषुम्ना के भीतर घुसते हैं। इनसे अगों की खबरें मिलती हैं, सवेदना का ज्ञान होता है—इसलिए ये सांवेदनिक हैं।

सुषुम्ना मे (मस्तिष्क के विपरीत) सफ़ेद पदार्थ बाहर है और धूसर पदार्थ भीतर। सफ़ेद पदार्थ धूसर को बिल्कुल ढके

और घेरे रहता है। धूसर भाग में सेलें और सफ़ेद में सूत्र होते हैं।

अन्दर रहनेवाला धूसर भाग अंगरेज़ी भाषा के 'एच्' (H) अक्षर के आकार से बहुत कुछ मिलता है। धूसर भाग के, या यों कहिये कि H के, दो मुड़े हुए अगल-बग़ल के (पार्श्विक) हिस्से हैं, जो एक पुल सरीखे अंश से मिले रहते हैं। प्रत्येक पार्श्विक भाग मुड़ा रहता है। उसका अगला सिरा मोटा और छोटा होता है और पिछला लंबा और पतला। अगला सिरा अगली सींग (पूर्व शृंग, anterior horn) और पिछला पिछली सींग (पाश्चात्य शृंग, posterior horn) कहलाता है। ऊपर बताया गया है कि हरेक स्नायु की दो जड़ें होती हैं, अगली और पिछली। स्नायुओं की अगली जड़ें अगली सींगों से निकलती हैं और, जैसा कि ऊपर कहा गया है, उनसे निकले तार अंग अंग की पेशियों तक जाते हैं। ये चालक हैं। पिछली जड़ पिछली सींग से जुड़ती है। इस जड़ में आया हुआ तार अंगों से आता है और संवेदना का बोध कराता है। यह संवेदनिक तार है।

सुषुम्ना का धूसर पदार्थ बनावट में मस्तिष्क के धूसर पदार्थ की तरह है। वह भी न्यूरोन और उनसे निकले सूत्रों से बना है। सुषुम्ना का सफ़ेद पदार्थ ऐसे स्नायु-सूत्रों से बना होता है, जो चर्बी-दार खोल से ढके होते हैं। ये सूत्र मस्तिष्क के विविध भागों से आते हैं और विविध भागों में जाते हैं—इस तरह वे मस्तिष्क से शरीर में प्रेरणाएँ ले जाते हैं। शरीर के दाहिने हिस्सों के सूत्र मस्तिष्क के बायें हिस्से में जाते हैं और शरीर के बायें हिस्से के सूत्र मस्तिष्क के दाहिने हिस्से में जाते हैं।

अगर किसी (सुषुम्ना की) स्नायु के चालक तार की जड़ कट जाय या नष्ट हो जाय तो उससे सम्बन्ध रखनेवाली पेशी

की गति रुक जाती है, पर अगर उसी अंग में सुई चुभाई जाय या उस पर कोई गर्म चीज रखी जाय तो संवेदना का बोध होता है। इसी तरह अगर किसी संवेदनिक तार की जड़ नष्ट हो जाय तो उससे सम्बन्धित अंग में पेशियों की गति तो होगी पर उसमें सुई चुभने पर दुख का बोध नहीं होगा। मिश्रित स्नायु की यही विशेषता है।

सुषुम्ना के काम—

यह बात समझ में आ गई होगी कि सुषुम्ना के सफेद पदार्थ के बनाने वाले स्नायु सूत्र और धूसर पदार्थ में स्थित स्नायु-केन्द्र बड़े महत्वपूर्ण हैं।

सफेद पदार्थ में ही वह शक्ति है, जिससे मस्तिष्क मे और मस्तिष्क मे प्रेरणायें और खबरें आती जाती हैं। शरीर के दाहिने हिस्से की खबरें मस्तिष्क के बायें हिस्से में पहुँचती हैं और शरीर के बायें हिस्से की खबरें मस्तिष्क के दाहिने हिस्से में पहुँचती हैं। मस्तिष्क से प्रेरणाओं के आने का भी ऐसा ही तिरछा-तिरछा प्रबंध रहता है। अगर सुषुम्ना में बीमारी या चोट-चपेट से कोई खराबी पैदा हो जाय तो प्रेरणाओं का आना जाना बंद हो जाय। सुषुम्ना में जहाँ पर खराबी आई है उससे नीचे के अंगों में न तो कोई गति हो सकेगी और न उसमें दुख इत्यादि का संवेदनात्मक बोध हो सकेगा। यह कहा जायगा कि उन अंगों पर फालिज गिर गया। अगर सुषुम्ना के उस भाग में खराबी पैदा हुई है, जो गर्दन से नीचे है तो फालिज गिर जायगा पर जीवन का नाश न होगा, पर अगर गर्दन के अन्दर वाले सुषुम्ना के भाग में खराबी आयगी तो शीघ्र ही मृत्यु हो जायगी। बात यह है कि इस हिस्से से स्नायु-तार निकलकर महाप्राचीरा पेशी में जाते हैं और उसका संचालन और नियंत्रण करते हैं। महाप्राचीरा का

सम्बन्ध साँस लेने से है। अगर स्नायु के इस गर्दन वाले हिस्से में खराबी आ गई तो साँस लेना असम्भव हो जायगा और मृत्यु जरूर होगी।

यह तो हुई सुषुम्ना के सफेद पदार्थ के सम्बन्ध की बात। भूरा पदार्थ भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। भूरे पदार्थ के बनाने वाले न्यूरोन का सम्बन्ध उन पेशियों की गति से है, जिन (पेशियों) में सुषुम्ना का स्नायुओं की अगली जड़ वाले चालक तार पहुँचते हैं। (अब यहाँ पर मस्तिष्क के भूरे पदार्थ और सुषुम्ना के भूरे पदार्थ में जो मुख्य भेद है उसे समझना चाहिए। मस्तिष्क के भूरे पदार्थ के न्यूरोन इच्छानुसार गतियाँ पैदा कर सकते हैं। यह शक्ति सुषुम्ना के भूरे पदार्थ के न्यूरोन में नहीं है।) अगर सुषुम्ना में चोट लगे और खराबी आ जाय तो खराबी के स्थान से नीचे के अंगों की पेशियाँ, जिनका संचालन स्नायु की अगली जड़ के तारों से होता है, मनुष्य के इच्छानुसार संचालित न होंगी और वे अंग इच्छानुसार घुमाये-चलाये न जा सकेंगे। जब उनका मस्तिष्क से सम्बन्ध ही न रह गया तो इच्छानुसार उनका संचालन कैसे हो सकता है। फिर भी अगर किसी ऐसे अंग में चिकोटी काटी जाय या खुजलाया जाय तो उस प्रेरणा के उत्तर में (प्रति-क्रिया स्वरूप) उस अंग में किसी न किसी तरह की गति हो सकेगी, पर इस गति में मस्तिष्क का हाथ न होगा। ऐसी हालत में यह होता है कि सावेदनिक तारों से प्रेरणा सुषुम्ना में पहुँचती है, उसका प्रत्युत्तर सुषुम्ना (मस्तिष्क नहीं) चालक तार के सहारे उस अंग की पेशी में भेज देती है, और तब उस अंग में बिना मस्तिष्क की प्रेरणा के ही कुछ गति हो जाती है। ऐसी गति या इसी तरह की और क्रियाओं को **परावर्तित क्रिया** (reflex action) कहते हैं।

परावर्तित क्रिया—

ऊपर बताई बातों से यह समझ में आ गया होगा कि

परावर्तित क्रिया (reflex action) क्या है, पर इसमे और भी समझाया जायगा। परावर्तित क्रिया उस क्रिया या गति को कहते हैं, जो विना मस्तिष्क के जाने हुए, विना हमारी इच्छा के या विना हमारे जाने हुए, सिर्फ सांवेदनिक स्नायु की उत्तेजना से, होती है। परावर्तित क्रियाओ में मस्तिष्क का कोई हाथ नहीं होता। (सुषुम्ना में जो केन्द्र हैं वे नीचे दर्जे के केन्द्र कहलाते हैं, क्योंकि वे मस्तिष्क के ऊँचे दर्जे के केन्द्रो से नियंत्रित होते हैं और उनमे इच्छानुसार गति पैदा करने की शक्ति नहीं होती। वे मशीन की तरह काम करते हैं।)

परावर्तित क्रिया के कई उदाहरण दैनिक जीवन के कामो में मिलते हैं। अगर कोई अंधेरे से उजाले में जाय तो आँख की पुतली सिकुड कर छोटी हो जाती है। इसी तरह अगर कोई उजाले मे अंधेरे में जाय तो पुतली फैलकर चौड़ी हो जाती है। इस तरह पुतली के आकार में जो परिवर्त्तन होता है उसका ज्ञान आदमी को विल्कुल नहीं होता। अगर हमारी आँख पर कोई छोटी भी चीज अचानक आ गिरती है तो पलक तुरत ही झपक जाता है। पलक के झपकने में हमारी इच्छा का कुछ भी हाथ नहीं रहता। पलक इतना जल्द झपकता है कि हमें सोचने-विचारने या इच्छा करने का समय ही नही मिलता। अगर मैं सोया रहूँ और कोई मेरा तलवा खुजलावे तो उस हालत मे भी अँगूठे और उँगलियो मे या तलवे में किसी न किसी तरह की हरकत हो जाती है। इसी तरह अच्छे भोजन को देखकर ख़ुद-ब-ख़ुद मुँह मे लार निकल पडती है और आमाशय में भी आमाशयिक रस बनने लगता है। इन सब उदाहरणो से यह साफ समझ मे आता है कि जो क्रिया किसी दूसरी क्रिया के उत्तर मे, विना मेरे जाने या विना मेरी इच्छा के होती है वह परावर्तित क्रिया है।

परावर्तित क्रिया सुषुम्ना के आदेश से ही सपादित हो जाती है। उसमें मस्तिष्क का हाथ नहीं रहता। लेकिन अगर सुषुम्ना का सम्बन्ध मस्तिष्क से बना हुआ है (चोट इत्यादि के कारण नष्ट नहीं हुआ है) तो केन्द्रगामी तार, जो अंगो से संवेदना के समाचार को सुषुम्ना तक लाता है, उस समाचार को मस्तिष्क तक भेज देता है। इधर सुषुम्ना तो जरूरी क्रिया के लिए आज्ञा दे देती है और वह क्रिया हो भी जाती है। पर अगर मस्तिष्क चाहे तो वह सुषुम्ना की आज्ञा को रद्द कर सकता है या उस सम्बन्ध में और क्रियाओ के किये जाने की आज्ञा दे सकता है। मान लो, किसी लड़के ने जलते कोयले पर उँगली रखी और उसे कष्ट हुआ। उँगली की खाल के सांवेदनिक तारों ने, जो केन्द्रगामी तार हैं, इस कष्ट की सूचना को सुषुम्ना मे पहुँचाया। अब अगर सुषुम्ना का सम्बन्ध मस्तिष्क से बना हुआ है (जो बिना किसी चोट-चपेट या खराबी के साधारणतः बना ही रहता है) तो ऊपर कहे कष्ट की सूचना सुषुम्ना में पहुँच कर मस्तिष्क को चली जाती है। बात यह है कि सुषुम्ना में प्रवेश करने पर केन्द्रगामी तार के कई भाग हो जाते हैं। एक छोटे भाग का सुषुम्ना में ही अन्त हो जाता है। बडा भाग मस्तिष्क को चला जाता है। मस्तिष्क तक सूचना पहुँचने म कुछ देर लगती है। उससे पहले ही सुषुम्ना अगली जड़ वाले चालक तार द्वारा उचित आज्ञा भेज देती है, जिससे पेशियों का सकोचन होता है और उँगली या हाथ आग के पास से हट जाता है। इस परावर्तित क्रिया में सुषुम्ना उसी तरह काम करती है जिस तरह किसी जरूरी मौके पर छोटा अफ़सर बड़े अफ़-सर के न रहने पर या दूर होने के कारण जरूरी आज्ञा दे देता है। अब आग छूने के कारण जो कष्ट हुआ है उस पर मस्तिष्क भी विचार करता हे। अगर वह जरूरी समझता है तो और क्रियाओं को आज्ञा देता है, जिससे लड़का चिल्ला उठता है या वहाँ से भाग

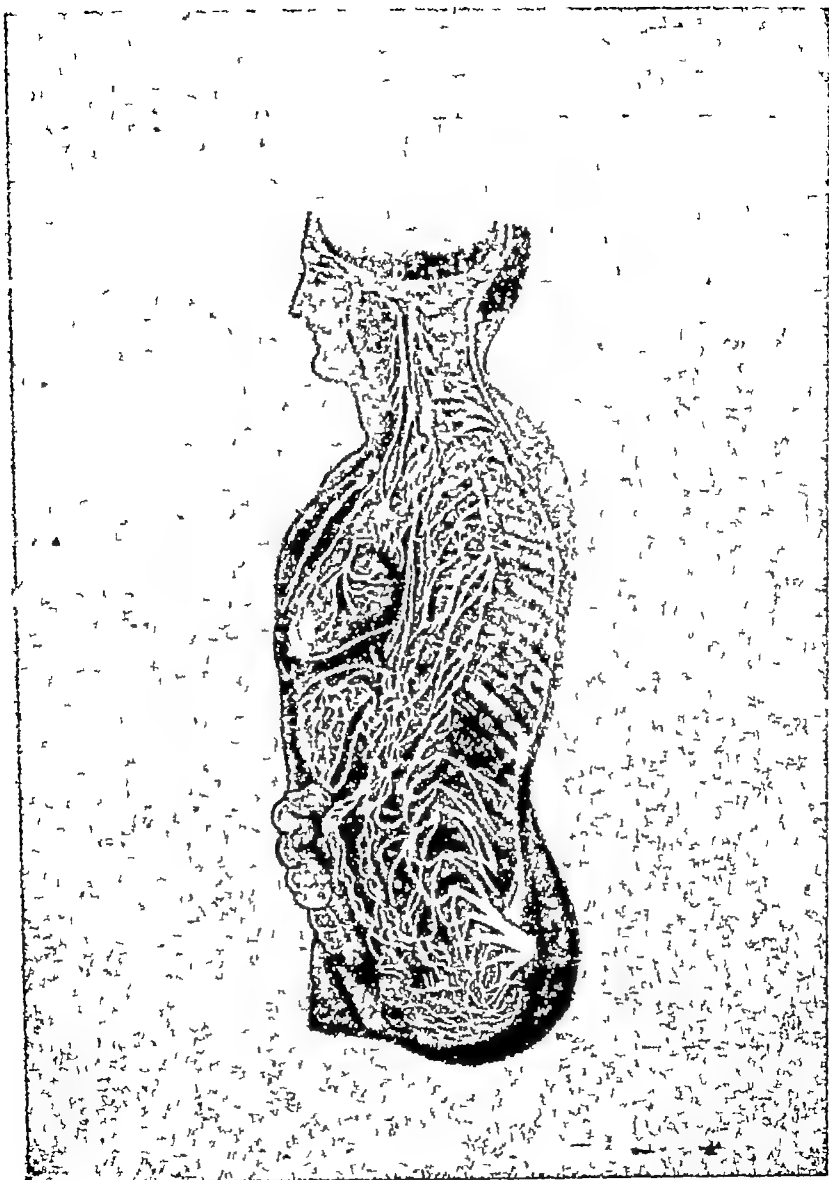
जाता है। हो सकता है कि मस्तिष्क सुषुम्ना की आज्ञा को रद्द कर दे और लड़का प्रयोग की दृष्टि से (यह जानने के लिए कि जलने की तकलीफ ठीक कैसी होती है) अपनी उँगली को फिर अंगारे के पास ले जाय। परावर्तित क्रिया का मुख्य उद्देश्य अक्सर शरीर की रक्षा होता है।

जीवन की कई क्रियाएँ, जैसे टहलना इत्यादि, जो छुटपन में सीखते समय इच्छा के बल से होता है, आगे चलकर परावर्तित क्रियाएँ हो जाती हैं। उनमें मस्तिष्क लगाना नहीं पड़ता। साइकिल चलाना सीखते समय की क्रिया इच्छा के वश की गई क्रिया है, पर सीख लेने पर वह भी परावर्तित क्रिया हो जाती है।

स्वतंत्र स्नायु-संस्थान—

स्वतंत्र स्नायु संस्थान (sympathetic nervous system) को पिंगल-नाड़ी-मंडल भी कहते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है, मेरुदंड के सामने और उसके दोनों तरफ दो डोरियाँ पड़ी होती हैं। प्रत्येक डोरी में थोड़ी थोड़ी दूरी पर गाँठो जैसे उभार होते हैं। इन गाँठों के कारण डोरी एक माला (या जंजीर) की तरह दिखाई देती है, जिसमें गाँठें दाने की तरह मालूम होती हैं। गाँठें (गंड, ganglia) कुछ कुछ पिंगल वर्ण की होती हैं, इसी से स्नायु-संस्थान के इस भाग को पिंगल नाड़ी मंडल कहते हैं।

गाँठों से शाखाएँ निकलती हैं, जिनमें से कुछ सुषुम्ना से निकली स्नायु की शाखाओं से मिलती हैं, और कुछ भीतरी अंगों (दिल, आमाशय, आँत इत्यादि) को और खून की नलियों में जाती है। दिल, फेफड़े, आमाशय, आँत, पेशाब की थैली और पेट के अन्दर के दूसरे अंगों की स्वाधीन गतियाँ इसी संस्थान की प्रेरणा से होती है। सुषुम्ना शीर्षक में जो साँस लेने और



स्वतंत्र स्नायु-सम्थान की घाईं तरफ की शृंखला, जिससे शाखाएँ निकल कर भीतरी अंगों को गई हैं। चित्र नं०—६६

रक्त-संचार इत्यादि के केन्द्र हैं, उनसे भी यह स्वतंत्र स्नायु-संस्थान प्राणदा स्नायु (vagus nerves) से सम्बन्धित रहने के कारण सबंधित है।

स्वतन्त्र स्नायु-संस्थान का शरीर के भीतर यन्त्रो पर बहुत प्रभाव पड़ता है और कुछ अंश में यह पाचन, रक्त-संचार और श्वास-क्रिया को भी नियंत्रित करता है। कुछ परिस्थितियो में, जैसे डर, खुशी, शोक इत्यादि की अवस्थाओं में, आमाशय, दिल और फेफड़े पर स्वतत्र स्नायु-सस्थान द्वारा एक विशेष प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिए किसी ऐसे आदमी को लो जो डरा हुआ है। डर से चेहरा पीला पड़ जाता है। होता यह है कि जब कोई भाव मन मे उदय होता है तो उसका प्रभाव स्वतंत्र सस्थान तक पहुँच जाता है। इस सस्थान के सूत्र (तार) चेहरे की दीवार मे, जहाँ खून की नलियाँ रहती हैं, चारो तरफ फैले रहते हैं। जब (जैसे कि डर की अवस्था में) खून की नलियों पर इन स्नायु सूत्रो का ज्यादा प्रभाव पडता है तो उनमें कम खून आ पाता है और चेहरा पीला पड़ जाता है। इसी तरह खुशी में चेहरा ज्यादा चमकीला हो जाता है और शोक मे डूबे आदमी की भूख मारी जाती है।

* * * *

स्नायु-संस्थान को ठीक हालत में रखना हमारा परम कर्त्तव्य है। उचित भोजन और व्यायाम और, इन दोनो से भी अधिक, समुचित आराम से स्नायु-सस्थान स्वस्थ रहता है, जिससे शरीर के सभी काम ठीक ठीक चलते है। आराम के लिए आवश्यकतानुसार ६ से ८ घंटे हर रोज सोना जरूरी है।

हमारी विशेष इन्द्रियाँ

चेतना (sensation)—

चेतना या किसी किसी अर्थ में संवेदना स्नायु-संस्थान के ही कारण होती है। स्नायु-संस्थान के सहारे हम बाहरी दुनियाँ का ज्ञान (चेतना या संवेदना के रूप में) प्राप्त करते हैं। सांवेदनिक स्नायुओं (sensory nerves) की क्रिया या प्रतिक्रिया से जिस ज्ञान का बोध होता है, उसे चेतना या संवेदना कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई धडाके का शब्द होता है तो कानों के द्वारा एकाएक एक विशेष भाव उत्पन्न होता है। थोड़ी देर के लिए हम एक भीषण शब्द सुनने का अनुभव करते हैं। इसी तरह और चेतनाएँ या संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। अगर हमारे शरीर के किसी भाग में सुई छुलाई जाय तो हमें उसी समय उस स्थान पर किये गये इस विशेष कार्य का ज्ञान होता है और बिना इच्छा किये ही हमारा हाथ उस स्थान पर पहुँच जाता है। इस तरह सुई के स्पर्श का यह ज्ञान हमें चेतना (sensation) द्वारा हुआ। जिस इन्द्रिय विशेष के कारण संवेदना या चेतना उत्पन्न होती है, उसका नामकरण उसी इन्द्रिय के आधार पर होता है। इस तरह चेतना उत्पन्न करने वाली इन्द्रियों की संख्या परिमित है। इन इन्द्रियों द्वारा हमें किसी प्रकार का ज्ञान होता है। यह ज्ञान हमें स्पर्श का, देखने का, सुनने का, सूँघने का, या स्वाद का हो सकता है। जिन इन्द्रियों द्वारा इनका ज्ञान होता है उन्हें ज्ञान-इन्द्रियाँ कहते हैं। इस प्रकार मनुष्य के शरीर में पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ हुईं—खाल (स्पर्श-संबंधी), आँख (देखने के लिए), कान (सुनने के लिए) नाक (सूँघने के लिए) और जीभ (चखने के लिए)। दुःख और

तापमान (pain and temperature) का अनुभव करने वाली इन्द्रियाँ भी इन्ही पाँचों के अन्तर्गत हैं, पर कुछ लोग इन्हें अलग मानते हैं। इनके अलावा भी कई और साधारण चेतनाएँ होती हैं। सारे शरीर में फैले हुए स्नायु-जाल पर जब किसी भीतरी अवयव या ख़ून का प्रभाव पड़ता है तब और भी कई अनुभव होते हैं। भूख, थकावट, कमजोरी और माँसपेशियों का ज्ञान इसी तरह के अनुभव हैं। ऐसा अनुभव किसी ख़ास अंग में हो सकता है; जैसे भूख पेट में मालूम होती है, पर उसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है।

कुछ लोग माँसपेशियों को भी एक अलग इन्द्रिय मान लेते है, क्योंकि उनका (माँसपेशियों) ज्ञान उन्ही तक परिमित रहता है, लेकिन यह बात मानने योग्य नहीं है, क्योंकि माँसपेशियाँ किसी विशेष अवयव द्वारा बाह्य संसार का अनुभव नहीं करतीं। इस चेतना का ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही होता है। तो भी माँस-पेशी की चेतना द्वारा हमें किसी वस्तु के भारी या हल्के होने का ज्ञान होता है।

विशेष इन्द्रियाँ—

जैसा कि ऊपर बताया गया है, सांवेदनिक स्नायुओं के उत्तेजित होने से जो अनुभव मस्तिष्क में होता है, उसे संवेदना (sensation) कहते हैं। जो ख़ास अंग इस उत्तेजना से प्रभावित होकर उसे एक स्नायु-सम्बन्धी प्रेरणा में बदल देता है उसे **ज्ञानेन्द्रिय** (sense-organ) कहते हैं। ये इन्द्रियाँ, जैसा कि ऊपर बताया गया है, पाँच हैं, और शरीर के भिन्न भिन्न भागों में स्थित हैं। ये विशेष प्रकार की शक्तियों द्वारा उत्तेजित होती हैं, जैसे कान शब्द-लहरों से प्रभावित होता है और आँख प्रकाश की किरणों से।

संवेदनिक स्नायु का प्रभाव, चाहे वे जिस कारण से उत्तेजित हो, उस इन्द्रिय पर अवश्य पड़ता है, जिससे वह सम्बन्धित है।

स्पर्श (छुए जाने का ज्ञान)—

स्पर्शनेन्द्रिय मानो सारे शरीर मे फैली हुई है। खाल में और मुँह, नाक इत्यादि की श्लैष्मिक झिल्ली मे संवेदनिक स्नायु के जो तार फैले हुए हैं उन्ही की उत्तेजना मे स्पर्श-ज्ञान होता है। जीभ, उंगलियो और नाक की नोकों पर और निचले होठ में स्पर्श का ज्ञान बड़ा जोरदार होता है। बात यह है कि स्पर्श ज्ञान **स्पर्शकणों** (touch corpuscles) से होता है। यह स्पर्शकण सेलों से बने होते हैं और इनमे सावेदनिक स्नायु-तार की शाखाएँ समाप्त होती हैं। जीभ, उँगली, नाक इत्यादि की नोकों मे ये स्पर्शकण बहुतायत से होते हैं।

तापमान और दुःख (temperature and pain)—

तापमान के अनुभव के लिए त्वचा मे दूसरी तरह के कण हैं। इन्ही की उत्तेजना से गर्मी और दुःख का बोध होता है। ये कण बाहरी खाल (epidermis) के नीचे स्थित हैं और स्पर्श कण से भिन्न हैं। तापमान से सबसे अधिक प्रभावित होने वाले अग जिह्वा की नोक, पलकें, गाल, होठ और हथेलियाँ हैं। खाल से तापमान का सही ज्ञान नहीं होता, क्योंकि अगर हम थोड़ी देर के लिए अपना एक हाथ ठंडे पानी में रखें और दूसरा हाथ गर्म पानी में, और फिर दोनो हाथो को साधारण गर्म पानी में रखें तो ठंडे पानी वाले हाथ को पानी गर्म मालूम होगा और गर्म पानी वाले हाथ को पानी ठंडा मालूम होगा। इसलिए खाल तापमान का ठीक अनुभव नहीं कर सकती। तापमान का बोध होना खाल के

अन्दर की ख़ून की नलियों पर निर्भर है। अगर नलियाँ ख़ून से भरी हैं तो गर्मी मालूम होगी और अगर उनमें ख़ून नहीं है तो ठंड मालूम होगी।

स्वाद—



जीभ का ऊपरी हिस्सा, जो अंकुरों के कारण रुखड़ा है। रेकिना किनारे के निकले हिस्से स्नायु-तार हैं। चित्र नं० ६७

जीभ अधिकतर माँसल है। यह मुँह में रहती है और अपनी जड़ के पास श्लैष्मिक झिल्ली की एक तह के सहारे हलक़ से जुडी रहती है। इस पर श्लैष्मिक झिल्ली चढ़ी होती है। यह झिल्ली जीभ के नीचे के सतह में चिकनी है पर ऊपर रुखड़ी है, क्योंकि ऊपर के सतह में बहुत से छोटे छोटे दाने होते हैं। इन दानों को अंगरेजी में (पैपिले, अंकुर, papillae) कहते हैं। प्रत्येक दानों में एक छोटा सेल-समूह रहता है। इन सेलों को स्वाद कोष (taste-

bud) कहते हैं। इन्ही स्वाद कोपो मे स्वाद के स्नायु-तार समाप्त होते है।

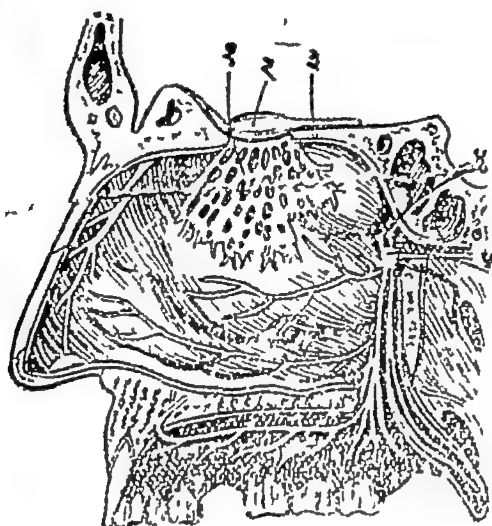
जीभ में तीन तरह की स्नायुओं का प्रबन्ध है। ये स्नायु, जैसा कि स्नायु-संस्थान के वर्णन में बताया गया है, मस्तिष्क-स्नायुओ में से पाँचवी, नवीं और बारहवीं हैं। पाँचवीं और नवीं सांवेदनिक स्नायु हैं। पाँचवी जीभ के सामने और बीच में रहती है और बारहवीं पीछे के हिस्से में। ये दोनो स्वाद की नाड़ियाँ हैं। बारहवीं स्नायु चालक है और भोजन करने और बोलने में जीभ की गति को नियन्त्रित करती है।

स्वाद तभी जाना जा सकता है जब खाई जाने वाली वस्तु घुली हुई दशा में हो। ये वस्तु स्वाद कोपो को उत्तेजित करती हैं, और वह उत्तेजना स्नायविक प्रेरणा में बदल कर स्नायु-सूत्रो द्वारा मस्तिष्क में पहुँचती है। इस प्रकार मस्तिष्क के स्वाद-केन्द्रो द्वारा स्वाद का पता चलता है। स्वाद के लिए यह जरूरी है कि खाई जाने वाली चीज़ या तो घुली हो या लार में घुल जाय। अगर जीभ को अच्छी तरह पोछ कर उस पर नमक रखा जाय तो तब तक कोई स्वाद न मालुम होगा जब तक कि नमक घुल न जाय।

स्वाद चार प्रकार के होते हैं :—कड़वा, मीठा, नमकीन और खट्टा। जीभ की नोक मीठी चीजो का और जीभ का पिछला भाग कड़वी चीज़ो के स्वाद का अनुभव करते हैं। दूसरे प्रकार के जितने और स्वाद होते हैं, वे सब इन्ही चारों स्वादो के मिलने से बनते हैं। स्वाद के साथ गंध का भी सम्बन्ध है। खाते समय वस्तु की सुगंध भी मिलती रहती है, जिससे हम उस वस्तु को बड़ी रुचि से खाते हैं। इसी से जब हम कोई बुरी गंध वाली दवा पीते हैं तो उँगलियो से नाक बन्द कर लेते हैं और इसी से जब सर्दी-जुकाम होता है तो स्वाद का पता ही नहीं चलता।

गध (घ्राण)—

नाक से गध मालूम होती है। नाक के नथनो में झिल्ली रहती है। इसमे स्नायु-तार और खून की अनेक



नाक का भीतरी दृश्य। चित्र न० ६८

पतली नलियाँ बहुतायत से रहती हैं। नथने के ऊपरी भाग में सूघने की स्नायु (पहली मस्तिष्क-स्नायु) होती है और नाक के निचले भाग से श्वास-क्रिया होती है। इस भाग से सूँघने की क्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं है। साधारणत: साँस लेते समय हमे किसी प्रकार की गध नहीं मिलती। अगर हमें गध मालूम करना होता है तो हम ज़ोर ज़ोर से हवा खीचते हैं, जिससे नाक में सूँघने की स्नायु पर प्रभाव पड़ता है, और हमें गध मिलती है।

घ्राण-स्नायु (nerves of smell) पर भाप के कण पहुँच कर घ्राण सेलों पर एक प्रकार का विशेष प्रभाव डालते हैं। घ्राण-

नाड़ियो द्वारा यह प्रभाव मस्तिष्क के घ्राण-केन्द्रो में पहुँचता है, और तब हमें गध का ज्ञान होता है।

जुकाम हो जाने पर हमे गध का कोई ज्ञान नहीं रहता, क्योंकि श्लैष्मिक-झिल्ली फूल जाती है और हवा को नाक के ऊपरी भाग तक पहुँचने नहीं देती। इसीलिए हमें जुकाम में गध का अनुभव नहीं होता।

आँखें और देखना

आँख के गोलों (नेत्र-गोलकों, eyeballs) की रक्षा—

आँखें देखने की इन्द्रियाँ हैं, जो नाक के दाहिनी और बाईं ओर दो गड्ढों में रहती हैं। प्रत्येक आँख एक छोटी गेंद की तरह गोली है, और दृष्टि-स्नायु (optic nerves) द्वारा उसका सम्बन्ध मस्तिष्क से रहता है। आँख के गोलों (नेत्र-गोलकों) की रक्षा **पलकों** (eyelids) द्वारा होती है। पलकें चमड़े और माँस-पेशियों से मिल कर इस प्रकार बनी हैं कि वे घूम-फिर सकती हैं। पलक का भीतरी भाग एक पतली झिल्ली द्वारा ढका रहता है। इसको **नेत्राच्छादनी** (conjunctiva) झिल्ली कहते हैं। इसकी छाया नेत्र-गोलकों पर पड़ती रहती है। पलकों के किनारों में बाल होते हैं। इन्हे **बरौनी** (**पक्ष्म**, eye lashes) कहते हैं। माँस-पेशियों के सिकुडने से पलकें बन्द होती हैं और खुलती हैं। पलकों को ऊपर उठाने के लिए ऊपरी पलक में माँस-पेशी रहती है।

नेत्राच्छादनी झिल्ली (conjunctiva) खारे पानी से सदा भीगी रहती है। यह पानी आँसू की गिल्टियों से निकला करता है। ये गिल्टियाँ आँख के गढ़ों के ऊपरी और बाहरी भाग में होती हैं। आँसू नेत्राच्छादनी झिल्ली और आँखों को धोकर आँख के कोनों में से होकर भीतर ही भीतर नाक में चला जाता है। जब कभी आँसू ज्यादा मात्रा में बनता है, जैसे आँख में धुआँ लगने के कारण या किसी उद्वेग से, तो वह नाक की नलियों में न जाकर बाहर बहने लगता है।

एक साथ मिल कर और कभी अलग अलग नेत्र-गोलको को हर दिशा मे घूमने में सहायता देती हैं। साधारणतः दोनो आँखें साथ साथ घूमती हैं। इस प्रकार नेत्र-गोलको की गति में असमानता नहीं पाई जाती। जब कोई निकट की वस्तु देखते हैं तब दोनो आँखे भीतर की ओर होती हैं। अगर माँस पेशियों मे कोई दोष आ जाता है तो आँखे ऐंची हो जाती हैं। तब यह नहीं पता चलता कि आँखे दाईं ओर देख रही हैं या बाईं ओर। ऐसी दशा मे कभी कभी वस्तुएं दुगनी दिखाई देती हैं।

नेत्र-गोलक (आँख के गोले)—

नेत्र-गोलक ठीक गेंद की तरह गोले नहीं होते। इनकी लम्बाई एक कोने से दूसरे कोने तक एक इच होती है। नेत्र-गोलक का अगला भाग कुछ उभरा हुआ होता है। इसको **कनीनिका** (cornea) कहते है।

नेत्र-गोलक की दीवार मे तीन तहें होती हैं। बाहर से भीतर की ओर इन तहो के नाम इस प्रकार हैं :—

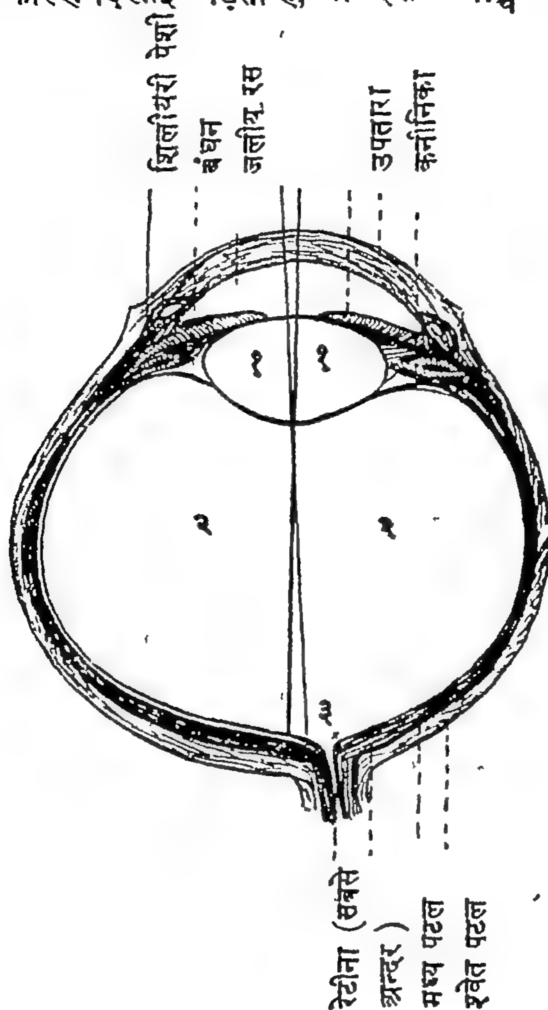
श्वेत पटल और कनीनिका (sclerotic and cornea)

मध्यपटल और उपतारा (choroid and iris)

अन्तरीय पटल, रेटीना (retina)

(१) **श्वेत पटल** एक रेशेदार मोटी तह है और नेत्र के $\frac{5}{6}$ भाग पर फैला रहता है। यह पारदर्शी (इस पार से उस पार दिखने वाली) कनीनिका से मिला होता है। जब हम किसी मनुष्य की आँख निकट से देखते हैं तो श्वेत पटल अपार-दर्शी देख पडता है। हम श्वेत पटल को कनीनिका के चारो ओर देखते हैं। कनीनिका का रंग भूरा या काला दिखाई पड़ता है। पर वास्तव

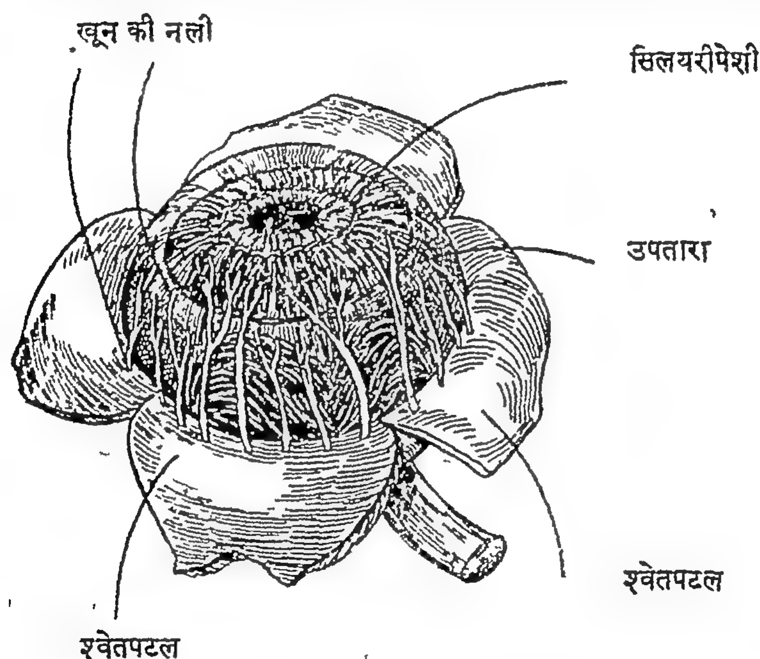
में कनीनिका पारदर्शी है। इसका काला या भूरा रंग उपतारा (iris) के कारण दिखाई पड़ता है, जो इसके बीच में से होकर



आँख के अन्दर का एक दृश्य, १—ताल, २—स्वच्छ द्रव्य
३—दृष्टि नाड़ी के मिलने का स्थान, यहीं पर काला धब्बा होता है। इसकी दूसरी तरफ़ दोनों लाइनों के बीच पीत बिन्दु रहती है। चित्र नं० ७०

चमकता है। श्वेत पटल के पीछे दृष्टिस्नायु लगी होती है। श्वेत पटल के बाहरी भाग में कई छोटी मांसपेशियाँ लगी होती हैं, जो नेत्र-गोलक की गति मे सहायता देती हैं।

(२) मध्य पटल (choroid) काली भूरी झिल्ली है, जो श्वेत पटल के नीचे और उससे बिल्कुल मिली होती है। इसमे



मध्यपटल और उपतारा के दृश्य। कनीनिका हटा दी गई है और श्वेत पटल के टुकड़े उलट दिये गये हैं। चित्र न० ७१

जोड़ने वाले तंतु रहते हैं, जिनके अन्दर खून की पतली नलियाँ और रंग देने वाले सेल होते हैं। इस पटल का काम है आँख की कोठरी को अन्धकारमय बनाये रखना, जिससे अन्दर आने वाले प्रकाश द्वारा चमक पैदा न हो। श्वेत पटल की तरह इसमें भी

विशेष उल्लेखनीय है। ये प्रकाश से बहुत प्रभावित होती हैं और रेटीना के भागों की दृष्टि-शक्ति इस पर निर्भर है कि किस भाग में कितने डंडे और सूचियाँ हैं। काले धब्बे पर ये डंडे और सूचियाँ नहीं पाई जातीं, लेकिन पीत बिन्दु पर इनकी अधिकता होती है और इसी से वहाँ देखने की शक्ति भी अधिक होती है। दृष्टि-स्नायु के सूत्र ही दृष्टि का प्रभाव मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं।

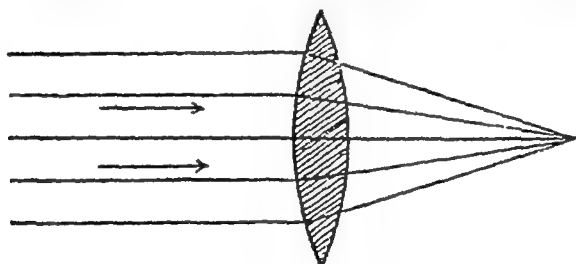
आँख के भीतरी कोष्ठ—

उपतारा (iris) एक पर्दे की तरह आँख के भीतरी भाग को दो कोष्ठों में बाँटता है—एक तो उपतारा और कनीनिका (cornea) के बीच का भाग, जिसे **आगे का कोष्ठ** (anterior chamber) कहते हैं, और दूसरा उपतारा के पीछे और रेटीना से घिरा हुआ भाग, जिसे **पीछे का कोष्ठ** (posterior chamber) कहते हैं। आगे के कोष्ठ में स्वच्छ और निर्मल पानी की तरह एक पारदर्शी पदार्थ होता है, जिसे **जलीय रस** (aqueous humour) कहते हैं। पीछे के कोष्ठ में एक गाढ़ा और कुछ लसदार स्वच्छ अर्द्ध तरल द्रव्य भरा रहता है, जिसे **स्वच्छ द्रव्य** (vitreous humours) कहते हैं। यह उपतारा के पीछे लगे हुए ताल (lens) को अपने ऊपर धारण करता है। जलीय रस, ताल और स्वच्छ द्रव्य मिल कर आँख के भीतर एक ऐसा माध्यम बनाते हैं, जिससे कि बाहर से आता हुआ प्रकाश तिरछा होकर रेटीना पर केन्द्रीभूत (एक स्थान पर इकट्ठा, focus) होता है, स्वच्छ रूप से अंकित होता है, और हम अच्छी तरह देख सकते हैं।

देखना (दृष्टि)—

किसी भी वस्तु को देखने से पहले यह आवश्यक है कि प्रकाश की किरण रेटीना पर केन्द्रीभूत हो। यह तो हम जानते हैं कि

किसी दीपक के प्रकाश की किरणें निकट से देखने पर तिरछी दिखाई पडती हैं और दूर से देखने पर सीधी और समानान्तर दिखाई देती हैं। लेकिन रेटीना पर प्रकाश के केन्द्रीभूत होने के पहले यह आवश्यक है कि वह उचित माध्यम में से तिरछा होकर अन्दर आवे। यहाँ पर मोटे तौर पर यह बताया जायगा कि उन्नतोदर ताल (ऐसा ताल जिसकी पीठ एक ओर उभरी हो, convex lens) का दृष्टि से क्या सम्बन्ध है। उन्नतोदर ताल (convex lens) की एक ही पीठ उभरी होती है। दुहरे उन्नतोदर ताल (double



चित्र नं० ७२

convex lens) की दोनों पीठें उभरी होती हैं और सिरों पर मिली होती हैं। उन्नतोदर ताल की यह विशेषता होती है कि (१) यदि उस ताल में से किसी भी वस्तु को देखा जाय तो उसकी सूरत उल्टी दिखाई पडती है, (२) ताल के जितनी ही नज़दीक वस्तु होगी उतनी ही दूरी ताल और परछाहीं पड़ने के स्थान में होगी और (३) जितना ही ताल उभरा हुआ होगा उतनी ही कम दूरी पर वस्तु की परछाहीं साफ़ देख पड़ेगी।

जब आँख मे प्रकाश की किरणें आती हैं तो वे तिरछा करने वाले माध्यम (कनीनिका, जलीय रस, ताल और स्वच्छ द्रव्य) से होकर एक स्थान में केन्द्रीभूत होती हैं। जिस आँख में कोई

दोप नहीं है उम आँख में ऊपर वाली क्रिया होने पर रेटीना पर प्रकाश की किरणें जाकर इकट्ठी होती हैं और इसका प्रभाव दृष्टि स्नायु द्वारा मस्तिष्क को पहुँचता है। तभी हमें वस्तुओ के रंग, आकार इत्यादि का ज्ञान होता है।

यह तो हम पढ चुके हैं कि माध्यमों द्वारा रेटीना पर किसी वस्तु का आकार (मूर्त्ति या सूरत) उल्टा पडता है। अव यह समझना है कि हमे वह वस्तु सीधी कैसे दिखाई पड़ती है। इसमें वही क्रिया होती है जो कि फ़ोटोग्राफ के कैमरे मे होती है। कैमरे में पहले उल्टा आकार दिखाई पड़ता है, पर कागज़ पर छप जाने पर वह सीधा हो जाता है। इसी तरह रेटीना पर पड़े उल्टे आकार का अनुभव मस्तिष्क सीधा करता है।

भिन्न भिन्न दूरी पर वस्तुओं को देखने की शक्ति—

ससार की वस्तुएँ आँख से भिन्न भिन्न दूरी पर रहती हैं, कोई निकट और कोई दूर। लेकिन ताल और रेटीना के बीच की दूरी हर हालत में एक ही रहती है। फिर भी ताल के उन्नतोदर होने के कारण सब वस्तुओं का, चाहे वे दूर पर हो या निकट, ठीक ठीक फोकस (एक केन्द्र पर एकत्रित परछाहीं) रेटीना पर पड़ता है। इससे जान पड़ता है कि ताल में ही कोई ऐसी शक्ति है, जिससे वस्तुओ के भिन्न भिन्न दूरी पर रहते हुए भी ताल और रेटीना के बीच की दूरी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस शक्ति को **संयोजक-शक्ति** (ठीक करने की शक्ति, accommodation) कहते हैं। जो साधारणतः अच्छी आँख है उसको दूर की चीजें देखने के लिए सयोजन (accommodation) की विशेष आवश्यकता नहीं होती। लेकिन २० फ़ुट से कम दूरी पर की वस्तुओं को देखने के लिए सयोजन की आवश्यकता पड़ती है। यह तो हम जानते ही हैं कि रेटीना और ताल के बीच की दूरी सदा एक ही

रहती है। इसलिए जब हम कोई नजदीक की वस्तु देखते हैं तो ताल की उभरी पीठ और उभर जाती है या यों कहिये कि ताल का उन्नतोदरत्व बढ़ जाता है। इस काम में ऊपर बताई सिलियरी पेशियाँ सहायक होती हैं। वे मध्य पटल को आगे की ओर खींचती हैं, जिससे मध्य पटल के नीचे की उभरी तहों से लगा हुआ ताल का बंधन ढीला पड़ जाता है और ताल आगे की ओर और भी उभर आता है। देखने की चीज जितनी नजदीक होगी उतनी ही सिलियरी पेशी ज्यादा सिकुड़ेगी और ताल का पीछे का बंधन ढीला पड़ेगा, जिससे वह (ताल) आवश्यकतानुसार आगे को उभर आवेगा। यही कारण है कि पढने या लिखने के समय बहुत नजदीक से देखने के कारण सिलियरी पेशियो पर बहुत जोर पडता है, जिससे वे कमजोर पड़ जाती हैं और दूर-दृष्टि नामक रोग हो जाता है।

दोनों आँखों की समान दृष्टि—

जब हम किसी वस्तु को देखते हैं तो दोनों आँखो से देखते हैं, फिर भी वस्तु एक ही दिखती है। इसका कारण यह है कि उसका प्रतिबिम्ब दोनो आँखों के रेटीना पर एक सा बनता है। यह आवश्यक है कि दोनों रेटीना में एक ही तरह एक प्रमुख भाग पर ही परछाही पड़े और साथ ही पीत-बिन्दु पर पड़े, जिससे वस्तु साफ साफ और एक ही देख पड़े। यह तभी हो सकता है जब दोनों आँखों की पेशियाँ एक साथ काम करें। यही होता भी है। पेशियों की सहयोगिता और आँख की संयोजक शक्ति से दो आँखों से देखी गई एक चीज एक ही दिखती है और दो आँखों से देखे जाने के कारण उसका आकार-प्रकार बिल्कुल साफ मालूम होता है।

दृष्टि और प्रकाश सम्बन्धी कुछ बातें—

एक ही ओर देर तक देखते रहने से रेटीना में थकावट आ

जाती है। यदि हम किसी चमकीली वस्तु को थोड़ी देर तक देखते रहें और फिर आँखें घुमाकर सफेद दीवार को देखें तो उस पर एक काला धब्बा देख पड़ेगा। इसका कारण है रेटीना का थक जाना। रेटीना की यह विशेषता है कि वह देखी हुई चीज की परछाहीं, उस चीज के हट जाने के बाद, $\frac{1}{8}$ सेकन्ड तक अपने में रखती है। अगर चलती तस्वीरें इस तेजी से आँखों के सामने से निकाली जायँ कि एक की परछाहीं मिटने के पहले दूसरी की परछाहीं पड़ जाय तो जीवन की सच्ची घटना की तरह तस्वीरों का क्रम देख पड़ेगा। यही सिद्धान्त सिनेमा की तस्वीरों को बनाने में लागू होता है। सिनेमा मे चित्र इतनी तेजी से पर्दे पर आते है कि रेटीना मे उनकी लगातार परछाहीं पड़ती जाती है।

प्रकाश में सात रंग होते है—बनफशी (violet), नीला (indigo), आसमानी (blue), हरा (green), पीला (yellow), नारंगी (orange), और लाल (red)। यदि हम किसी तिकोने शीशे (prism) में से प्रकाश मे देखें तो ये रंग बिल्कुल साफ साफ दिखाई पड़ते हैं।

कुछ लोग रंग की पहचान नही कर पाते। उन्हें 'रंग का अंधा' (colour blind) कहते हैं। यदि रेटीना में कोई दोष आ जाता है तो मनुष्य 'रंग का अंधा' (colour blind) हो जाता है।

दृष्टिदोष—

हमारी आँखों की बनावट इस प्रकार होती है कि जितनी वस्तुएँ २० फुट या ८० फुट से अधिक दूरी पर होती हैं उनकी परछाहीं रेटीना पर ठीक ठीक पड़ती है। लेकिन जितनी वस्तुएँ आँख से बीस फुट से कम दूरी पर होती हैं उनकी परछाहीं ताल (lens) का आकार स्थिर रहने पर दृष्टि-पटल (retina) पर नहीं पड़ती।

जब आँख दूर की चीजें न देख सके तब यह बीमारी 'निकट-दृष्टि' (short sight) कहलाती है। ऐसे लोग नजदीक की चीजों को अच्छी तरह देख सकते हैं।

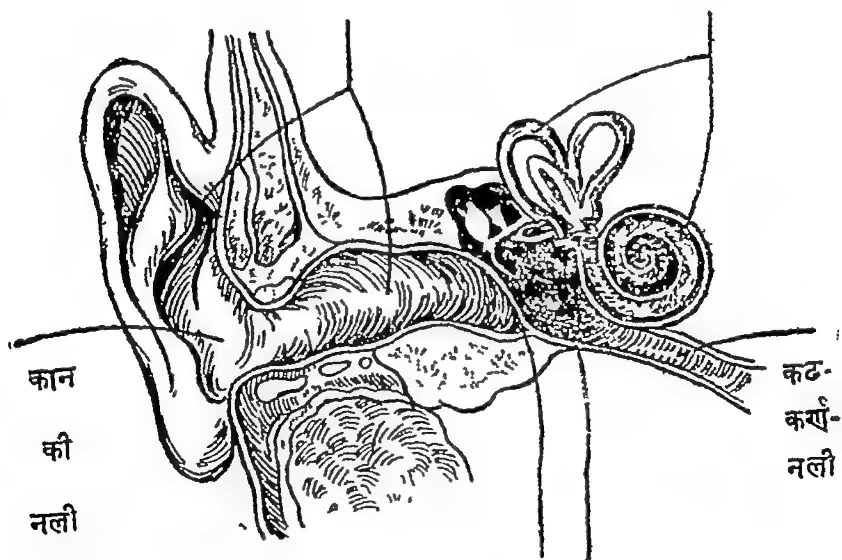
कुछ लोगों की आँख की बनावट इस प्रकार होती है कि उनको दूर की चीजें देखने में कोई कठिनाई नहीं होती, लेकिन वे नजदीक की चीजों को साफ साफ नहीं देख पाते। वे अच्छी तरह पढ़-लिख नहीं सकते। उनकी आँखों में थकावट आ जाती है और उनकी आँखें दुखने लगती हैं। इस रोग का नाम 'दूर दृष्टि' (long-sight) है। यह रोग अधिकतर जन्म ही से होता है। इसको दूर करने के लिए किसी विशेषज्ञ द्वारा आँख की परीक्षा करानी चाहिए।

यह देखा गया है कि चालीस-पैंतालीस वर्ष की अवस्था में आँखें धीरे धीरे दूर दृष्टि या समीप दृष्टि वाली हो जाती हैं। छोटे बच्चों को अधिकतर 'दूर दृष्टि' का रोग होता है। इसी प्रकार आँख के किसी भी भाग में कोई दोष आ जाने से भिन्न भिन्न प्रकार के नेत्र-रोग हो जाते हैं। लेकिन यह न भूलना चाहिए कि आँखें शरीर के अन्तर्गत अंग हैं और इस लिए सारे शरीर के स्वास्थ्य पर उनकी अच्छाई या कमजोरी निर्भर है।

कान और सुनना

सुनने का अंग (श्रवणेन्द्रिय)—

कान ही आवाज़ की लहरों (ध्वनि-लहरों, sound waves) को इकट्ठा करता है और उनको एक स्नायविक प्रेरणा में बदल



बाहरी, मध्य और भीतरी कान। चित्र नं० ७२

कर मस्तिष्क तक पहुँचाता है। ध्वनि-लहरें (sound waves)

कान के बाहरी भाग मे से होकर भीतर कान की नली (auditory canal) में आती हैं। कान की नली पर एक पतली झिल्ली लगी होती है, जिसे ढोल (कर्णपटह, drum) कहते हैं। यह झिल्ली बाहरी कान को मध्य कान से अलग करती है।

कान के तीन भाग होते हैं—(१) बाहरी कान, (२) मध्य कान और (३) भीतरी कान।

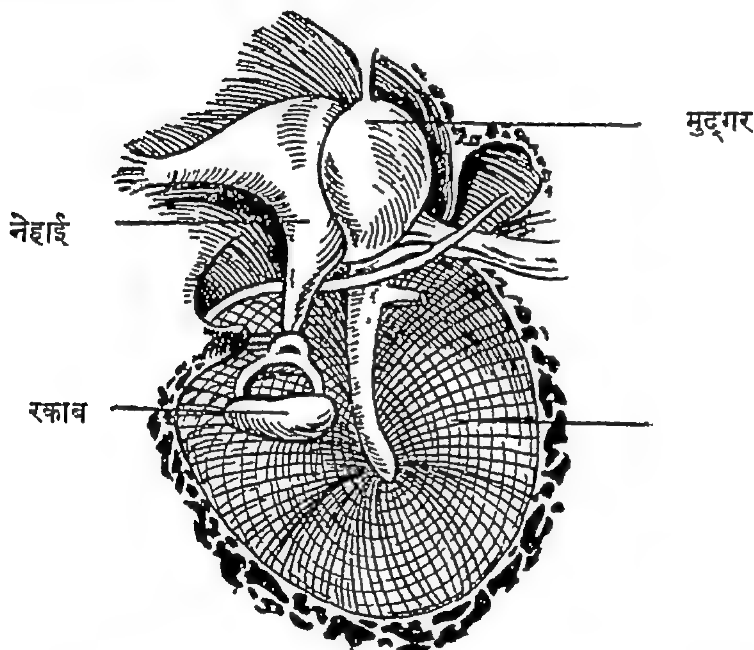
बाहरी कान (external ear)—

बाहरी कान के दो भाग होते हैं—(१) एक वह भाग जो सीपी की तरह रहता है और जिसमें छेद करा कर औरतें बालियाँ पहनती हैं। नीचे की लोर को छोड़ कर यह कारटिलेज का बना होता है। (२) दूसरा वह भाग जिसे **कान की नली** कहते हैं। यह नली लगभग १½ इंच लम्बी होती है। यह नली टेढ़े-मेढ़े घूम कर ढोल (कर्णपटह) तक पहुँचती है। इस नली में एक पतली खाल का स्तर लगा रहता है, जिसमें छोटी छोटी गिल्टियाँ रहती हैं। इनसे कान का मैल निकलता है। इस नली की खाल में छोटे छोटे बाल भी होते हैं। कान के मैल और बालों का काम है भीतरी भाग में धूल-कणों को न जाने देना।

मध्य कान (middle ear)—

यह एक छोटी सी कोठरी है, जो कनपटी की हड्डियो के भीतर रहती है। इसमें सब जगह एक पतली श्लैष्मिक झिल्ली लगी रहती है, और यह हवा से भरी होती है। इसकी बाहरी दीवार कर्णपटह से बनती है और इसकी भीतरी दीवार से भीतरी कान (अंतःस्थ कर्ण) का आरंभ होता है। इस दीवार में दो छेद होते हैं, एक अंडाकार, दूसरा गोला। बाक़ी दीवारें, छत और फर्श कनपटी की हड्डियों से बनते हैं। इसके सामने की

दीवार में एक नली का मुँह होता है। इस नली द्वारा मध्यकान का कंठ से सम्बन्ध रहता है। इस नली को **कंठ-कर्ण-नली** (eustachian tube) कहते हैं। नाक और मुँह के छेदों को बन्द करने पर साँस इस नली से होकर कान में जाने लगती है, जिसके शब्द को उस समय सुगमता से सुना जा सकता है।



कर्णपटह और मध्यकान की हड्डियाँ। चित्र नं० ७४

मध्यकान में तीन छोटी छोटी हडडियाँ होती हैं, जो कर्णपटह से लेकर भीतर दीवार तक फैली होती हैं। यह आपस में बन्धनों द्वारा बँधी होती है, और इनके बीच मे हिलने-घूमने वाले जोड होते हैं। कर्णपटह के पास की हड्डी (bone) को मुद्गर

(hammer) कहते हैं। बीच की हड्डी को नेहाई (anvil) कहते हैं। तीसरी हड्डी भीतरी कान के पास होती है। इसका नाम रकाब (stirrup) है। इन हड्डियों के नाम इनकी बनावट के अनुसार हैं। इन हड्डियो के सारे कर्णपटह पर पहुँची हुई आवाज़ की लहरे (ध्वनि लहरी) भीतरी कान तक पहुँचती है।

भीतरी कान (अन्तःस्थकर्ण, internal ear)—भीतरी कान की बनावट बहुत ही पेचीदी और विचित्र है। यह कनपटी की हड्डी के भीतरी भाग से सुरक्षित रहता है। इसकी बनावट की पेचीदगी के कारण इसे घूम-घुमैया (labyrinth) भी कहते है। भीतरी कान हड्डियो का बना है, पर मजा यह है कि हड्डी के बने घूम-घुमैया के अन्दर झिल्ली का घूम-घुमैया रहता है। इसके भीतर एक द्रव पदार्थ भरा होता है। जिस समय ध्वनि-लहरों से रकाब नामक हड्डी की जड मे कम्पन होता है उसके साथ ही वह झिल्ली भी हिलती है, जिसमें यह हड्डी लगी होती है। इसलिए झिल्ली के दूसरी ओर भीतरी कान का तरल पदार्थ (endolymph) बराबर थपथपाया जाता है, और इस प्रकार उत्पन्न हुई शब्द-तरगें भीतरी कान के कुडलाकार भाग को घूम कर आती है। कान का सबसे ज्यादा जरूरी भाग यही है।

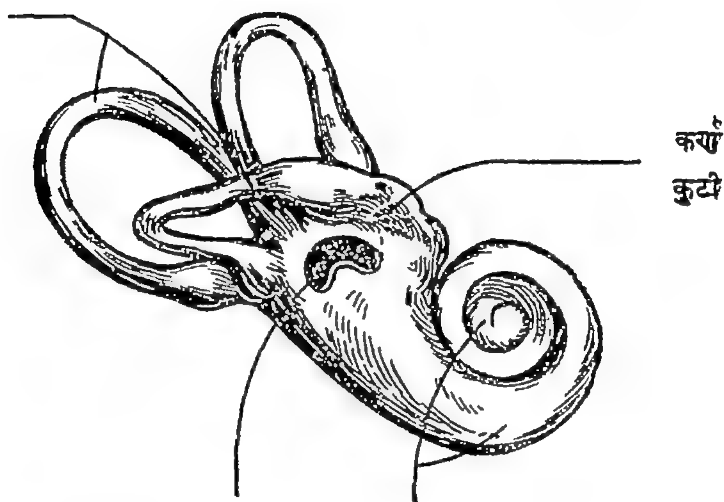
भीतरी कान के तीन भाग होते हैं :—

१—तीन अर्द्ध-चक्राकार नलियाँ (semi-circular canals),

२—कर्णकुटी (vestibule), **३—कोकला** (cochlea)

कर्णकुटी (vestibule) नामक कोठरी मध्य कान के सामने होती है। इसके सामने की ओर कोकला (cochlea) नामक भाग और पीछे की ओर अर्द्धचक्राकार नलियाँ (semi-circular canals) होती हैं। इसी की दीवार में अडाकार छेद होता है, जिसमें

रकाब हड्डी लगी होती है। कोकला (cochlea) कर्णकुटी के सामने घड़ी की कमानी के समान मुड़ा हुआ भाग होता है। इसकी शक्ल कोकला नामक एक शंख (घोंघा) से बहुत मिलती हुई होती है। अर्द्ध-चक्राकार नलियाँ (semi-circular canals) कर्ण-



भीतरी कान का घूम घुमैया। चित्र नं० ७५

कुटी (vestibule) के पिछले भाग से जुड़ी हुई होती हैं। इनकी संख्या तीन हैं। एक दूसरे से लम्ब (perpendicular) बनाती हैं। इनके और कर्ण कुटी के बीच में पाँच सूराख होते हैं। इनमें से दो कर्णकुटी से मिलने के पहले ही बन्द हो जाते हैं। अर्द्ध-चक्राकार नलियों के केवल एक सिरे पर श्रवण-स्नायु की शाखाये मिली होती हैं। अर्द्ध-चक्राकार नलियों का कार्य है कि ये छोटे मस्तिष्क को शरीर की गति से सूचित रक्खें।

ध्वनि-लहरों का कान पर प्रभाव—

जब कोई ध्वनि (आवाज़) होती है तो ध्वनि-लहरे वायुमंडल की प्रत्येक दिशा में फैल जाती हैं। ध्वनि लहरो की गति ११०० फुट प्रति सेकन्ड है। इस प्रकार तेजी से ध्वनि-लहरे कान के भीतरी अवयवो को प्रभावित करती हैं और मुद्गर नामक हड्डी के हिलने से बाक़ी दोनो हड्डियाँ भी हिलती हैं। इन्हीं ध्वनि-लहरो के कारण कान के भीतरी भाग मे जो तरल पदार्थ होता है उसमे कम्पन पैदा हो जाता है। इस कम्पन से श्रवण-स्नायु की नाडियाँ उत्तेजित होती हैं, जिससे मस्तिष्क तक प्रेरणाएं पहुँचती हैं। इन्हीं से आवाज (ध्वनि) का बोध होता है।

बहरापन—

बहरेपन के कई कारण हैं। कभी तो कान में अधिक मैल होने से, कभी कान का पर्दा फट जाने से और कभी कर्ण रोग हो जाने से लोग बहरे हो जाते हैं। कभी कभी कंठ-कर्ण-नली (eustachian tube) में दोष आ जाने से लोग कम सुनने लगते हैं। श्रवण स्नायु की खराबी और मस्तिष्क में जो श्रवण-केन्द्र है उसकी खराबी से भी बहरापन होता है।

स्वरयन्त्र और आवाज़

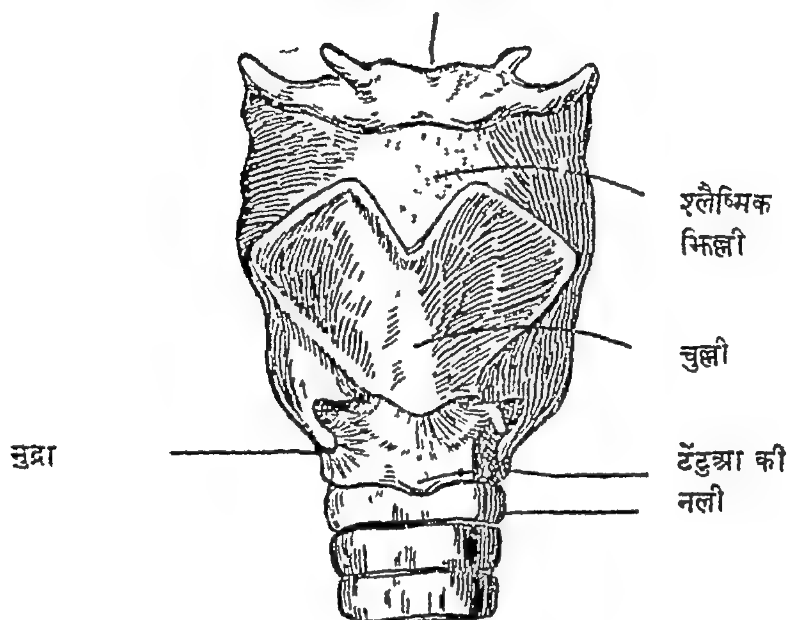
स्वरयन्त्र (larynx)—

स्वरयन्त्र का नाम पहले कई बार आ चुका है। यही आवाज की इन्द्रिय और टेंटुआ (trachea) का ऊपरी भाग है। स्वरयन्त्र नौ कारटिलेजों से बना एक कोष्ठ है, जिनमें मुख्य चार के नाम ये हैं — **चुल्ली कारटिलेज** (thyroid), **मुद्रा कारटिलेज** (cricoid) और दो **त्रिकोण कारटिलेज** (arytenoids)। इस कोष्ठ के नीचे के भाग से टेंटुआ शुरू होता है। इन चार कारटिलेजो के अलावा एक कारटिलेज पीपल के पत्ते की तरह होता है। वही **स्वरयन्त्रच्छद** (epiglottis) है, जो ढक्कन का काम करता है और भोजन को स्वरयत्र मे गिरने से बचाता है। (पृष्ठ ९७ ९८ देखो)। स्वरयत्र के कारटिलेज आपस मे पेशियों और बंधनो से बँधे रहते हैं। अब मुख्य चार कारटिलेजों का कुछ वर्णन दिया जाता है :—

चुल्ली कारटिलेज (thyroid)—स्वरयन्त्र के सामने और दोनों तरफ यही कारटिलेज होता है। सामने ठीक बीचो बीच उभरा हिस्सा होता है, जो 'आदम के सेब' (adam's apple) के नाम से प्रसिद्ध है। यह पीछे जुड़ा नहीं रहता। इसके पिछले भाग में एक पतली झिल्ली लगी होती है। ऊपर की ओर यह हाइआयड (hyoid) नामक हड्डी से मिला होता है और नीचे की ओर मुद्रा (cricoid) कारटिलेज से।

मुद्रा कारटिलेज (cricoid)—यह कारटिलेज चुल्ली कारटिलेज के नीचे होता है। हवा की नली में सिर्फ यही कारटिलेज पूर्ण है। इसकी शक्ल अँगूठी की तरह है इसी से इसे मुद्रा कारटिलेज कहते हैं। इसका पीछे का भाग चौडा और सामने का भाग सँकरा होता है। चुल्ली और इसके बीच का स्थान एक झिल्ली से मिला होता है। ऊपर दोनों ओर दो त्रिकोण कारटिलेज होते हैं।

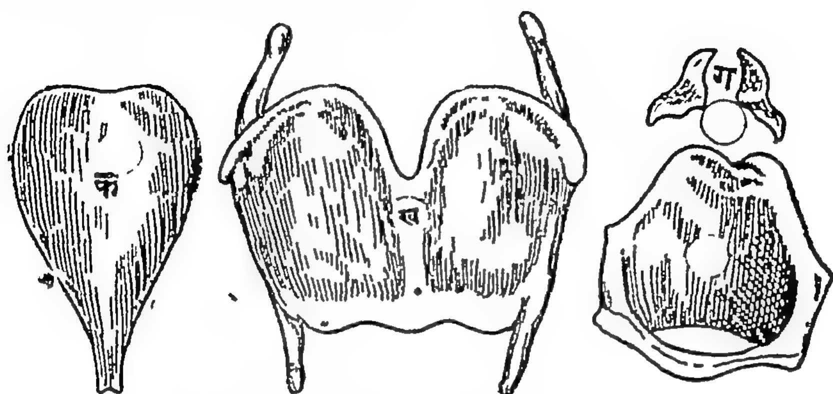
त्रिकोण कारटिलेज (arytenoids)—ये पिरामिड की शक्ल त्रिकोण दो छोटे कारटिलेज होते हैं, जो मुद्रा के ऊपर पीछे की



स्वरयंत्र । चित्र न ७६

तरफ़ इस प्रकार लगे होते हैं कि आसानी से हिल-डुल सकें। इस त्रिकोण कारटिलेज और चुल्ली के पिछले सतह के बीच में दो सौत्रिक बधन रहते हैं, जो पतली झिल्ली से ढके होते है। इन्हें **स्वर-तार, (स्वर रज्जु,** vocal cords) कहते हैं। ये बंधन इस प्रकार मिले होते है कि जब ये फैलते हैं तो इनके किनारो के पास-पास और समानांतर आ जाने से सिर्फ एक बहुत ही पतला सा छिद्र रह जाता है, जिससे होकर हवा जाती है। स्वर-तार के ऊपर दो

और अगल-बगल मे दो तन्तु की और दो तहे हैं। इनका स्वर उत्पन्न करने मे कोई हाथ नहीं होता।



क—स्वरयंत्रच्छद; ख—चुल्ली कारटिलेज; ग—त्रिकोण कारटिलेज; घ—मुद्रा कारटिलेज (देखो पृष्ठ २२८—२२६)

चित्र नं० ७७

यह समझना चाहिए कि स्वर-तारो के एक दूसरे के पास-पास आने या एक दूसरे से दूर रहने में मांस-पेशियाँ ही सहायक होती हैं। उन्हीं के सकोच और प्रसार से ऐसा हो सकता है। जब आदमी चुपचाप साँस लेता है तब स्वर-तारों के बीच में मामूली अन्तर रहता है, पर गहरी साँस लेते समय यह अन्तर बढ़ जाता है। बोलते समय यह अन्तर कम हो जाता है और गाते और चिल्लाते समय यह अन्तर बहुत कम हो जाता है।

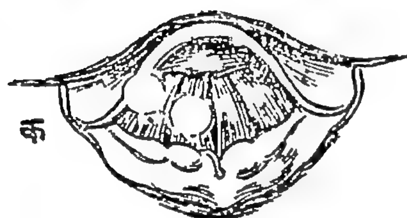
स्वरयत्रच्छद, जैसा कि ऊपर कहा गया है, एक पत्ती की शक्ल का कारटिलेज का टुकड़ा है, जिसका नीचे का पतला भाग चुल्ली कारटिलेज से मिला होता है। इसका काम है स्वरयन्त्र को खाने-पीने के समय बन्द रखना। वैसे साधारणतः साँस लेते समय यह सीधा रहता है।

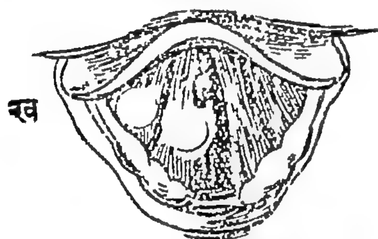
हाइआयड (hyoid) हड्डी अंगरेज़ी अक्षर यू (U) की तरह होती है और जीभ की जड में चुल्ली कारटिलेज के ऊपर होती है। यह किसी हड्डी से मिली नहीं होती बल्कि खोपड़ी मे लगे बधनों से लटकती रहती है। इसका सबंध जिह्वा और स्वरयंत्र की कई माँसपेशियों से रहता है।

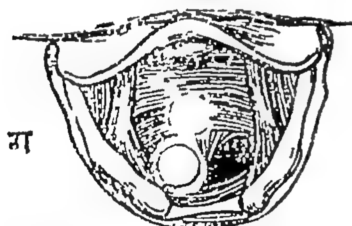
स्वर और भाषण—

स्वर स्वर-तारों (vocal cords) के प्रकम्पन से उत्पन्न होता है। साधारणतः साँस लेने के समय स्वर-तार ढाले रहते हैं। जब हम बोलते या गाते हैं तब स्वर-तार तन जाते हैं, और उस समय जो वायु बाहर निकलती है वह स्वर-तार में कम्पन पैदा करती है। वही स्वर है।

स्वर का मन्द और तीव्र होना कम्पन गति पर निर्भर है और कम्पन स्वर-तार पर निर्भर है। जितना ही छोटा और तना स्वरतार होगा, उतना ही कम्पन अधिक होगा और साथ ही स्वर तीव्र होगा।







स्वरयंत्र के तीन दृश्य क—गाने के समय;
ख—साधारण साँस लेने के समय,
ग—गहरी साँस लेने के समय।

चित्र नं० ७८

स्वर का मीठा या कड़ुवा होना कई बातो पर निर्भर है, जैसे मुँह, नाक और हलक की शक्ल और बनावट और जीभ का स्थान इत्यादि। ये अंग भिन्न भिन्न व्यक्तियो में भिन्न भिन्न होते है, इसीलिए एक व्यक्ति का स्वर दूसरे व्यक्ति के स्वर से भिन्न होता है। लडके और लडकियो का स्वरयन्त्र एक सा होता है, लेकिन लड़के जब बढ़ते हैं तो उनका स्वरयन्त्र बढ़ जाता है, जिससे स्वरतार भी बढ़ जाता है और कम्पन में विभिन्नता आ जाने के कारण स्वर मे अन्तर हो जाता है।

भाषण (बोली) वह स्वर है जो जीभ के गाल, होठ और दाँतो से टकराने से टूट टूट कर शब्द बन जाता है। हम जब बोलते हैं तो हमारी जीभ कभी होठ, कभी दाँत और कभी गाल की ओर आती-जाती है। इसी से स्वर टूट कर शब्दो में परिणत हो जाता है। फुसफुसाना बिना शब्द का भाषण है। इसमे लोग साँस से ही बोलते है, क्योकि स्वरतार में कम्पन नही होता। फुसफुसाने की आवाज जीभ और होठ की सहायता से होती है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

[१९३५ से १९४३ तक यू० पी० बोर्ड, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी और पटना यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न इन सब प्रश्नों के उत्तर इस पुस्तक में मिल जायेंगे]

१—मनुष्य शरीर के विभिन्न प्रकार के जोड़ों के नाम बताओ और उदाहरणों द्वारा समझाओ। किसी एक जोड़ का चित्र बना कर उसे सविस्तार वर्णन करो। [यू० पी० बो० १९३८]

२—टखना और पैर की हड्डियों को चित्र द्वारा दिखाते हुए वर्णन करो और यह भी बताओ कि वह एक दूसरे से किस प्रकार संबद्धित रहती है। हिन्दुस्तान में छोटे बच्चों के साथ अक्सर कौन कौन सी लापरवाही की जाती है जिससे इन हड्डियों में तकलीफ़ हो जाती है [यू० पी० बो० १९३९]

३—मांसपेशी संस्थान की हरकत से शरीर के किसी अंग की किस प्रकार हरकत होती है ? समझाओ । [प० यू० १९३७

४—पाचक यंत्रों के बारे में क्या जानते हो, बताओ ।
[ब० हि० यू० १९३९,' ४०,' ४१

५—पाचक यन्त्र कौन कौन से हैं ? विभिन्न खाद्य पदार्थों के पाचक की क्रियाओं को संक्षेप में बताओ । [प० यू० १९३६

६—एक चित्र बनाकर दिखाते हुए साफ़ साफ़ समझाओ कि मुँह से आँतों तक पहुँचने में खाये हुए पदार्थों में क्या क्या परिवर्तन होता जाता है । [यू० पी० बो० १९३७,' ४१

७—मनुष्य के हृदय का संक्षिप्त वर्णन करो और साथ ही यह भी समझाकर बताओ कि रक्त-संचार में उसके विविध भाग किस प्रकार सहायक होते हैं । [प० यू० १९३७

८—एक रेखा-चित्र द्वारा दिखाते हुए लिखो कि किस प्रकार शरीर में रक्त का संचार होता है । [प० यू० १९३७

९—मनुष्य शरीर में रक्त-संचार की गतियों और उस क्रिया में काम में आने वाले अंगों को समझा कर बताओ । [यू० पी० बो १९३५

१०—संक्षेप में इन दोनों के संबंध में लिखो—(अ) रक्त संचार और (ब) श्वास-क्रिया के यंत्र । [ब० हि० यू० १९३७

११—श्वास-क्रिया को बताओ । प० यू० १९४१

१२—श्वास क्रिया का क्या अर्थ है ? मनुष्य शरीर में श्वास-क्रिया के अंगों का वर्णन करो और श्वास संस्थान के कुछ रोगों को बताओ ।
[यू० पी० बो० १९३५

१३—आमाशय के क्या काम है ? शरीर में रक्त क्या करता है, शरीर में उसका किस तरह परिभ्रमण होता है ? [ब० हि० यू० १९४१

१४—गिल्टी क्या होती है ? 'सीक्रेशन' (रसोत्पादन) और 'एक्सक्रीशन' (मल बहिष्करण) में क्या भेद है ? किसी तीन सीक्रेशन को बताओ और यह भी लिखो कि मनुष्य शरीर में उनकी क्या क्या उपयोगिता है । यू० पी० बो० १९३६

१५—एक रेखा-चित्र खींचो और खाल के विविध हिस्सों की क्रियाओं को समझाओ। वह किस प्रकार स्वस्थ दशा में रखी जा सकती है ?
[यू० पी० बो० १९३७

१६—मस्तिष्क के विविध अंगों को बताओ और उनकी क्रियाओं को समझाओ। [प० यू० १९४१

१७—मानसिक परिश्रम के बाद व्यायाम दिमाग को फिर ताज़ा कैसे बना देता है ? [प० यू० १९३७

१८ रेखा-चित्र द्वारा मस्तिष्क और मेरुदंड की बनावट दिखाओ। शरीर के और किन आवश्यक अंगों से वह मिले हैं और क्यों ?
[यू० पी० बो० १९३६

१९—रेखा चित्र के द्वारा मस्तिष्क की बनावट दिखाओ। उसके विविध अंगों की क्रियाओं के बारे मे क्या जानते हो। 'रिफ्लेक्स ऐक्शन' किसे कहते हैं ? [यू० पी० बो०, १९३९

२०—शराब पीने से स्नायु (नाड़ी) संस्थान पर क्या प्रभाव पड़ता है ? [प० यू०, १९३७

२१—बताओ कि स्नायु संस्थान की हरकतों पर किस प्रकार अंगों की हरकतें निर्भर होती हैं ? [प० यू० १९३७

२२—मनुष्य की आँख की बनावट रेखा चित्र के सहारे अच्छी तरह समझाओ। जब एक आदमी किसी बाहरी वस्तु को देखता और पहचानता है तो क्या होता है ? [यू० पी० बो०, १९४१

२३—एक रेखा-चित्र के सहारे आदमी की आँख का वर्णन करो। दोषपूर्ण दृष्टि क्या है और उसकी पहचानें क्या क्या हैं ? आखों की शक्ति की रक्षा के लिये किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।
[यू० पी० बो०, १९३८

२४— कान के हिस्सों को दिखाते हुए एक चित्र खींचो और बताओ कि ध्वनि-तरंग किस प्रकार उन स्नायु रेशों में पहुँचते हैं जो सुनने के बोध को मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं। [यू० पी० बो०, १९३१

25. What is meant by pure air ? How does it affect our health ? Describe the organs of respiration and how they purify the blood. [B. H. U. 1942

26. Describe the general plan of the nervous system of human beings. If the sole of your foot is pricked by a thorn, you immediately feel pain How does this sensation of pain travel to your brain ? Draw a diagram to illustrate the path traversed by the sensation. [B H U. 1942

27. How many bones are there in the body, and what purpose do they serve ? Describe briefly the general structure of a joint. What foods and other measures would you recommend to a child whose bones show defective growth ? [B. H U. 1942

28. What do you know about the circulation of blood in our body ? What is its importance ? [P U. 1942

29. What are the organs of excretions ? Write in short their functions and their usefulness to our body ? [P U 1942

30. With the help of a diagram, explain the circulatory system of the body. [P U. 1942

31. Describe the process and function of respiration in your body. What are the organs involved in this function ? [P. U. 1943

32 Give a short account of the ordinary manner in which the brain becomes conscious of a sound,

describing very briefly the different parts of the ear that transmit it [U P. 1942

33 Describe clearly the structure of the cerebro-spinal nervous system, and illustrate your answer with a sketch. [U P. 1942

34 Answer briefly but precisely the following questions —

(*a*) Why should one not prick the canal of the ear with the finger, pencil, or hairpin ? [U P. 1942

(*b*) Why are intoxicating drinks considered injurious for the body and the mind ? [U. P 1942

(*c*) The white cells of the blood are sometimes called ' the soldiers of the blood ' Is this name appropriate ? Why ? [U P 1943

35 Write brief notes on the following :—

(*a*) Bones of the skull [U P 1943

36. What do you understand by the term 'Accommodation of the eye ? [U P 1943

37 Describe the various components of blood What part is played by each of them in the physiology of the human system ? How is nourishment carried by blood to different parts of the body ? [B H U 1943